तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

दिसंबर-2020 रु.5/-

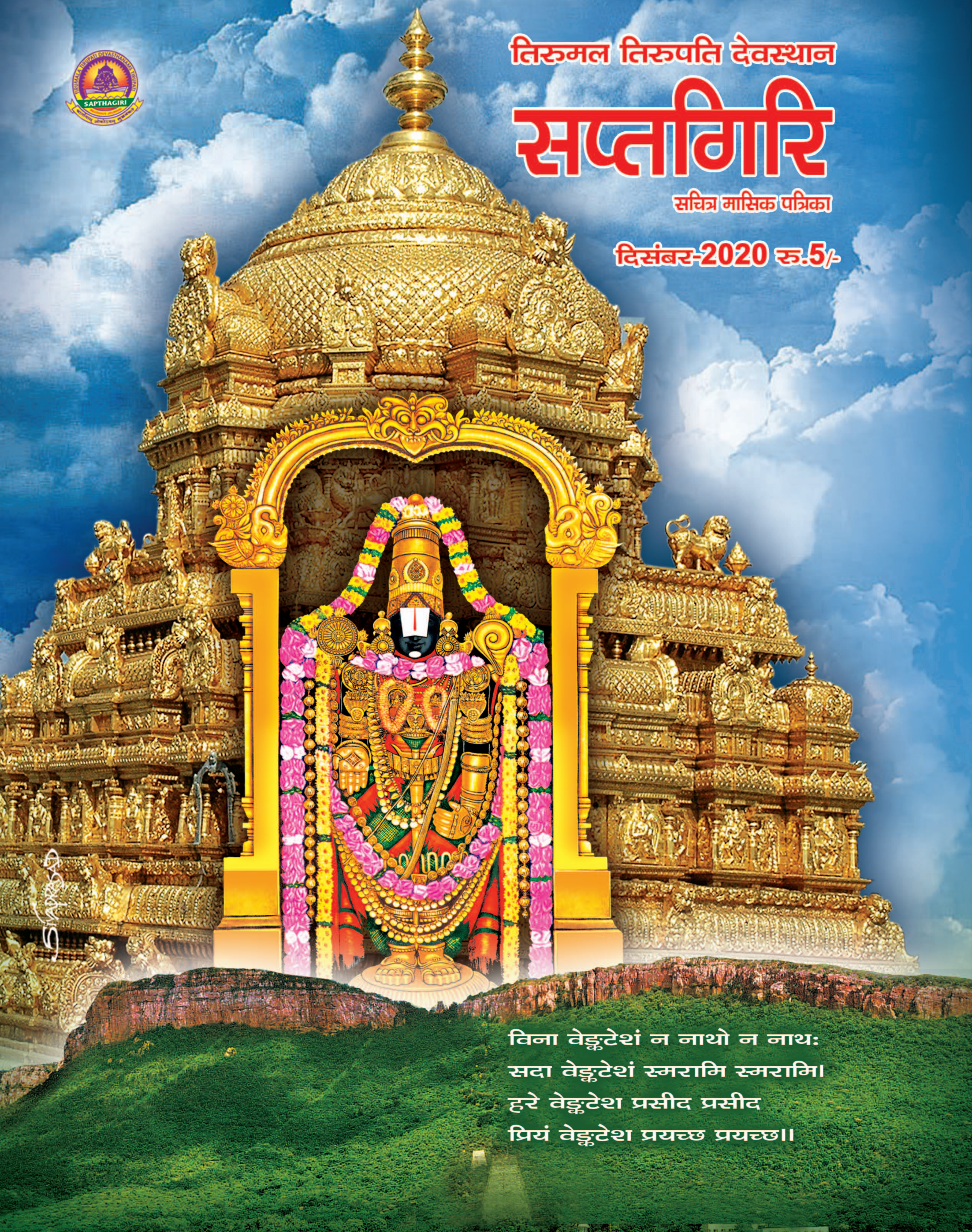

विना वेङ्कटेशं न नाथो न नाथः
सदा वेङ्कटेशं स्मरामि स्मरामि।
हरे वेङ्कटेश प्रसीद प्रसीद
प्रियं वेङ्कटेश प्रयच्छ प्रयच्छ।।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान
भारत के राष्ट्रपति सम्मान्यवर श्रीमान् श्रीरामनाथकोविंद के
द्वारा अपने सती-समेत २४.०१.२०२० पर
तिरुमल श्रीवारि और
तिरुचानूर श्री पद्मावती अम्मवार के
दर्शनों के दृश्य

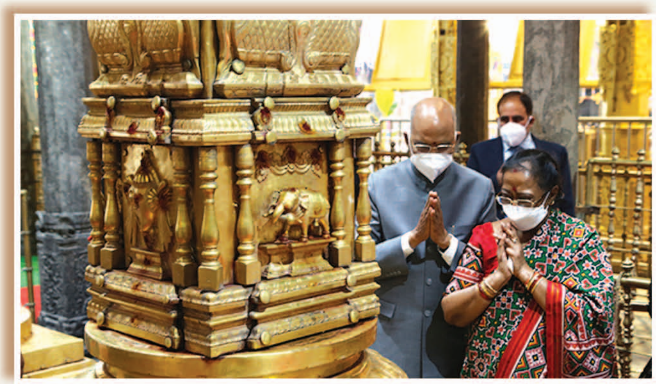

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः॥
(- श्रीमद्भगवद्गीता १-१७)

श्रेष्ठ धनुषवाले काशीराजा और महारथी शिखण्डी एवं धृष्टद्युम्न तथा राजा विराट और अजेय सात्यकि।

गीताशास्त्र मिदं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः पुमान्।
विष्णोः पद मवाप्नोति भय शोकादि वर्जितः।
(- गीता मकरंद, गीता की प्रशस्ति)

परम पावन इस गीता शास्त्र का प्रयत्न पूर्वक जो पठन करता है, वह भय एवं शोक रहित होकर विष्णुपद प्राप्त करेगा।

तिरुपति एवं उसके आसपास के दर्शनीय क्षेत्र

श्री गोविंदराज स्वामी मंदिर : आंध्रप्रदेश के चित्तूर जिले में तिरुमल पर्वत के पदभाग में तिरुपति स्थित है। वैष्णवधर्म के प्रवर्तक श्री रामानुज से संबंध रखनेवाला यह पुरातन शहर है। ११३० ए.डि. में प्रख्यात वैष्णवधर्म के प्रवर्तक श्री रामानुज ने श्री गोविंदराज स्वामी-मंदिर का निर्माण कर, परिसर के छोटे प्रांत को आवास योग्य बनाकर, उसे 'तिरुपति' का नाम रखा। पुराणों के अनुसार, यहाँ के मूर्ति की वैष्णव सम्प्रदाय के प्रवर्तक एवं महान आचार्य श्री रामानुज ने प्रतिष्ठा की। भगवान तो शयन मुद्रा में है। इस प्रांगण में श्री आण्डाल, श्री पार्थसारथी एवं श्री वेंकटेश्वरस्वामी के मंदिर हैं।

श्री कोदंडराम स्वामी मंदिर : तिरुपति रेल्वेस्टेशन से एक कि.मी. दूरी पर श्रीराम का मंदिर है। लंका से वापस आते वक्त सीता लक्ष्मण सहित श्रीराम के तिरुपति आगमन के स्मरण में इस मंदिर का निर्माण किया गया है। शिलालेख के आधार से १५वीं शताब्दी में सालुव नरसिंह के अभ्युदय के लिए नरसिंह मोदलियार नामक व्यक्ति ने इस मंदिर का निर्माण किया।

श्री कपिलेश्वर स्वामी मंदिर : तिरुपति से तीन कि.मी. दूरी पर भगवान शिव का मंदिर है। कपिल महर्षि द्वारा प्रतिष्ठापित होने के कारण भगवान को कपिलेश्वर और तीर्थ को कपिलतीर्थम् का नाम प्रचलित हो गया है।

अलमेलुमंगापुरम् (तिरुचानूर) : तिरुपति से ५ किलोमीटर की दूरी पर यह मंदिर स्थित है। श्री वेंकटेश्वरस्वामी की पत्नी श्री पद्मावती देवी का मंदिर है। कहा जाता है कि तिरुचानूर में विराजमान श्री पद्मावती देवी के दर्शन के बाद ही तिरुमल-यात्रा की सफलता प्राप्त होगी। श्री पद्मावती देवी मंदिर की पुष्करिणी को 'पद्मसरोवर' कहा जाता है। पुराणों के अनुसार भगवती देवी ने इस पुष्करिणी के स्वर्णपद्म में स्वयं अवतार लिया है।

श्रीनिवासमंगापुरम् : तिरुपति से १२ किलोमीटर की दूरी पर यह मंदिर स्थित है। ग्राम की आग्नेय दिशा में श्री कल्याण वेंकटेश्वरस्वामी का मंदिर है। पुराणों में कहा गया है कि श्री वेंकटेश्वरस्वामी ने श्री पद्मावती देवी से विवाह करने के बाद तिरुमल जाने के पूर्व कुछ समय तक इस क्षेत्र में ठहरे। १६वीं शती में ताल्लपाक चिन्न तिरुवेंगडनाथ ने इस मंदिर का जीर्णोद्धारण किया।

नारायणवनम् : तिरुपति से लगभग २२ किलोमीटर की दूरी पर आग्नेय दिशा में स्थित मंदिर में श्री कल्याण वेंकटेश्वरस्वामी विराजमान हैं। इसी पवित्र क्षेत्र में आकाशराजा की पुत्री श्री पद्मावती देवी एवं श्री वेंकटेश्वरस्वामी का विवाह सम्पन्न हुआ था। इस महान घटना की याद में आकाशराजा ने इस मंदिर का निर्माण करवाया।

नागलापुरम् : इस मंदिर में श्री वेदनारायण स्वामी विराजमान हैं। तिरुपति से लगभग ६५ कि.मी. दूरी पर आग्नेय दिशा में यह मंदिर स्थित है। विजयनगर शैली को प्रतिबिंबित करनेवाली यह सुन्दर नमूना है। गर्भगृह में दोनों ओर श्रीदेवी व भूदेवी सहित मत्स्यावतार रूपी श्री विष्णु की मूर्ति विराजमान है। मंदिर की विशिष्टता का प्रमुख कारण है, सूर्याराधना। हर वर्ष मार्च महीने में सूर्य की किरणें तीन दिन तक गोपुर से होती हुई गर्भगृह में स्थित मूर्ति को स्पर्श करती हैं। इसे सूर्य द्वारा भगवान की आराधना मानी जाती है। विजयनगर सम्राट श्रीकृष्णदेवराय ने अपनी माता के अनुरोध पर इस मंदिर का निर्माण कराया।

अप्पलायगुंटा : अप्पलायगुंटा में श्री प्रसन्नवेंकटेश्वरस्वामी का मंदिर है। तिरुपति से १५ कि.मी. दूरी पर स्थित है। ब्रह्मोत्सव तथा प्लवोत्सव आदि बडे पैमाने पर मनाया जाता है। इस प्राचीन मंदिर में श्री पद्मावती देवी एवं आंडाल की मूर्तियाँ विराजमान हैं। कार्वेटिनगरम् के राजाओं से निर्मित इस मंदिर के सामने श्री आंजनेय स्वामी की मूर्ति है। दीर्घकालीन व्याधियों के निवारण के लिए यहाँ विराजमान श्री आंजनेय स्वामी की भक्तों द्वारा पूजार्चना की जाती है।

कार्वेटिनगरम् : तिरुपति से ५८ कि.मी. की दूरी पर पुत्तूर के निकट यह मंदिर स्थित है। रुक्मिणी, सत्यभामा सहित श्री वेणुगोपाल स्वामी के दर्शन कर सकते हैं। प्राचीन काल में नारायणवनम् के राजाओं ने इसका निर्वहण किया। हनुमत्समेत श्री सीताराम व लक्ष्मण की एकशिला मूर्ति इस मंदिर में विराजमान हैं।

सप्तगिरि

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की सचित्र मासिक पत्रिका

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन।
वेङ्कटेश समो देवो न भूतो न भविष्यति॥

वर्ष-५१ दिसंबर-२०२० अंक-०७

गौरव संपादक
डॉ.के.एस.जवहर रेड्डी, आई.ए.एस.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
आचार्य के.राजगोपालन्

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम्

मुद्रक
श्री पी.रामराजु
विशेष अधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशी वार्षिक चंदा .. रु.850-00

अन्य विवरण के लिएः
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, Editor - 2264360.

विषयसूची

संसार का अयुर्वेद चिकित्सक भगवान धन्वंतरि	श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया	07
महिमान्वितं - मार्गशीर्षं	श्रीमती वी.केदारम्मा	10
श्री वैकुंठ एकादशी	श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया	13
श्रीमद्भगवद्गीता - विशेषताएँ	डॉ.के.एम.भवानी	16
महा योगीश्वर दत्तात्रेय	श्री के.रामनाथन	19
तिरुप्पावै - एक परिचय	श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण	22
भागवत कथा सागर भगवान् नृसिंहदेव का	श्री अमोघ गौराँग दास	51
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि. तापडिया	53
श्री रामानुज नूट्रन्दादि	श्री श्रीराम मालपाणी	55
ऊँचा स्वाद - ऊँचा लक्ष्य	श्री अमोघ गौराँग दास	56
अळगिय मनवाल पेरुमाळ् नायनार्	श्रीमती ममताभट्टड्	58
श्री वेंकटेश सुप्रभात	श्री यू.वी.पी.बी.श्रीनिवासाचार्यजी	60
हरिदास वाङ्मय में श्रीवेंकटाचलाधीश	डॉ.एम.आर.राजेश्वरी	63
श्री प्रपन्नामृतम्	श्री रघुनाथदास रान्दड	66
भगवद्गीता पारायण का फल	श्री वेमुनूरि राजमौलि	68
जीवन और दिनचर्या	श्री अंकुश्री	72
आइये, संस्कृत सीखेंगे...!!	डॉ.सी.आदिलक्ष्मी	74

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

मुखचित्र - सात-पहाडी राजा
चौथा कवर पृष्ठ - गोदादेवी की सज्जा में सात-पहाड़ी स्वामी

सूचना
मुद्रित रचनाओं में व्यक्त विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं।
- प्रधान संपादक

धनुर्मास (अगहन) का संरंभ

भारत मजेदार ऋतुओं का देश है। यहाँ के ऋतु अति मनोहर होते हैं। भारत उपखंड है, जहाँ विभिन्न संस्कृतियों के साथ-साथ महत्तर काल-दर्शी ऋतुओं का प्रवेश होता रहता है।

भारत में इन मनोहारी उपखंडी-ऋतुओं के आधार पर ही १२ मासों के नाम उद्भवित हुए हैं। और भी, इस अद्भुत देश में प्रकृति आराधकों की भी भरमार है। 'आर्यभट्ट' आदि खगोल-वैज्ञानिक यहाँ उपज कर, आकाशीय पिंडों व ग्रहों की गतियों तथा भूपटल पर उनके चमत्कारपूर्ण तथा प्रभावशाली प्रसारण को आंक कर भी मासों का नामकरण किया था! अगहन व मार्गशीर्ष या मार्गशिरमास को ''धनुर्मास'' भी कहते हैं। अगहन का नाम धनुर्मास इसलिए पड़ा था कि मार्गशिर शुक्ल प्रतिपदा को आकाश-क्षेत्र में सूर्यगोल कृत्तिकानक्षत्र-राशि से धनूराशि में प्रवेश करता है!! यह हुआ धनुर्मास के आविर्भाव का वृत्तांत!

धनुर्मास की विशिष्टता

धनुर्मास हेमंत-ऋतु में पड़ता है। हेमंत में कडाके की सर्दी पड़ती है। समस्त भरतखंड सर्दी की चपेट में आ जाता है। धार्मिक दृष्टि-कोण से देखा जाये, तो हिन्दुओं के लिए अगहन (मार्गशिर मास) अत्यंत प्रमुख समझा जाता है। महाभारत काल में (आज से ५००० साल पूर्व) मार्गशिर मास ही प्रथम मास के तौर पर समझा जाता था। हिन्दुओं के प्रस्थान-त्रय ग्रन्थों में प्रमुख ''भगवद्गीता'' में भगवान श्रीकृष्ण ने बताया था- ''मासानां मार्गशीर्षोऽ हम्!'' अर्थात्, मैं स्वयं मार्गशीर्षमास बन कर हूँ। अब कहना यह हुआ कि मार्गशिर अथवा अगहन अत्यंत पवित्र मास है, जिसमें स्वयं भगवान की महिमा का आवास है!!

दक्षिण भारत में अगहन का काफी महत्व होता है। अगहन पूरा दैव-चिंतन यहाँ चलता है। द्रविड़देश में श्रीहरि की भक्ति के प्रचार-हेतु ''आलवार'' नाम के १२ महानुभावों का समय-समय पर आविर्भाव हुआ था। आलवारों में गोदादेवी ''श्रीरंगम'' के स्वामी ''श्रीरंगनाथ'' को पति के रूप में वरण कर, उन्हीं से विवाह कर, उन्हीं में विलीन हो गयी थी!!

कात्यायनीव्रत-तिरुप्पावै

गोदादेवी को द्राविड़ों ने ''आण्डाल'' दर्जा दिया था। आण्डाल का अर्थ है- ''महामायी!!'' आण्डाल साक्षात् भूदेवी का अंश थी, अतः ''भूमादेवी'' भी कहलाती है। आण्डाल अपने आपको द्वापर की ''राधा'' समझती थी और अपने गाँव ''श्रीविल्लिपुत्तूरू'' को व्रजभूमि!! आण्डाल पर उन दिनों समाजिक पाबंदी लगायी गयी थी, क्योंकि उसने मानव-मात्र से विवाह न कर, साक्षात् भगवान श्रीरंगनाथ से व्याह करने की घोषणा कर दी थी!! अतः इन सामाजिक अड़चनों को पार करने के लिए गोदादेवी ने एक दैवीव्रत का आचरण किया, जिसका नाम ''तिरुप्पावै'' था। तिरुप्पावै अगहन पूरा मास चलता है- ३० दिन। तिरुप्पावै का अर्थ है- सुव्रत, शुभव्रत, मंगल-व्रत आदि।

तीसवे दिन आण्डालतायार का विवाह श्रीरंगम् के श्रीरंगनाथजी भगवान के साथ संपन्न हुआ था- उस पांड्यदेश के राजा ''वल्लभराय'' के समक्ष में!! मार्गशिरमास के ३० दिन पर्यन्त तिरुमल पवित्र गिरि पर विराजमान भगवान बालाजी श्रीवेंकटेश्वर की सन्निधि में सुप्रभात- सेवामें श्रीस्वामी के सुप्रभात-पठन के बदले-श्री आण्डाल- विरचित तिरुप्पावै के छंदों का पठन-मात्र होता है!! और-दक्षिण के सभी विष्णवालयों में भी!!

कर्कटे पूर्व फल्गुण्याम् तुलसी काननोद्भवाम्।
पांड्ये विश्वम्भरां गोदां-वंदे श्रीरंगनायकीम्।।

संसार का अयुर्वेद चिकित्सक भगवान धन्वंतरि

- श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र
अजवालिया
मोबाइल - ९६६४६९३०१३

पूरे संसार में भगवान धन्वंतरि को देवताओं के वैद्य माना जाता है। वे महान चीकित्सक हैं। धन्वंतरि साक्षात् भगवान विष्णु का अवतार है।

धन्वंतरि के जन्म के विषय में कई कथाएँ प्रचलित हैं, उनमें से प्रमुख दो कथाएँ इस प्रकार है।

प्रथम कथा के अनुसार इनका पृथ्वी लोक में अवतरण समुद्र मंथन के समय हुआ था। शरद पूर्णिमा को चंद्रमां, द्वादशी को कामधेनु गाय, त्रयोदशीको धन्वंतरि, चतुदर्शी को कालीमाता, और अमावस्या को लक्ष्मीजी का सागर से प्रादुर्भाव हुआ था, धन्वंतरि के साथ आयुर्वेद का भी प्रादुर्भाव हुआ।

दुसरी कथा के अनुसार एक ऋषि वनमें विशेष प्रकार के कुश (घास) ढूंढने निकला। उसे बहुत प्यास लगी, जंगल से बाहर आने पर उन्हें वैश्य जाति की विरभाद्रा नामक युवती से पानी मिला। ऋषि बहुत संतुष्ट हुआ और आशीर्वाद दिया ''भगवान तुम्हें ऐसा पुत्र देंगे, जिसके ज्ञान प्रकाश से समस्त संसार प्रकाशमान होगा। ''युवति इस आशीर्वाद से चिंतित हुई, क्योंकि वह कुंवारी थी। गलवान ऋषि युवती को अपने आश्रम में ले गया और विरभाद्रा की गोद में घासका पुतला बनाकर डाल दिया और धन्वंतरि का स्मरण कर मंत्र पढने लगे। कुछ समय बाद घासके पुतले ने बालक का रूप धारण किया। यह बालक ही धन्वंतरि का साक्षात स्वरूप है।

ज्यादातर भगवान धन्वंतरि के जन्म के विषय मे समुद्र मंथन की कथा प्रचलित है। आइये हम उसका अध्ययन करें।

प्रादुर्भाव की कथा और विष्णु भगवान द्वारा आयुर्वेद का प्रयोग

प्रारम्भिक कुछ मन्वन्तरों के बाद चाक्षुष मन्वन्तर आनेपर भगवान् विष्णु को ऐसा औषध-रत्न प्रकट करना पड़ा, जो न ब्रह्मा के पास था, न उनके शिष्य दक्ष-प्रजापति के पास, न उनके शिष्य इन्द्र के पास और न चमत्कारी देववैद्य अश्विनीकुमारों के पास ही था।

घटना इस प्रकार की है - छठे मनु का नाम था चाक्षुष। उन दिनों दुर्वास के शापसे देवराज इन्द्र के साथ-साथ सारे देवता भी श्रीहीन हो गये थे। दैत्योंने देवताओं को भगाकर दर-दरका भिखारी बना दिया था। निराश होने पर सब देवता मिलकर अपने पितामह ब्रह्मा के पास पहुँचे। ब्रह्माजीने जब देखा कि इन्द्र, वायु आदि सभी देवता अत्यन्त श्रीहीन और शक्तिहीन हो गये हैं तथा ये विकट परिस्थिति में पड़ गये हैं। तब वे भी चिन्तित हो गये। उन्होंने भगवान् का स्मरण किया। इस स्मरण से उन्हें बल मिला। शङ्कर आदि सभी देवताओं को साथ लेकर वे

भगवान् विष्णु के वैकुण्ठधाममें गये। किंतु उन्हें वहाँ कुछ दिखायी न पड़ा। दर्शन के लिये ब्रह्माजी ने लम्बी स्तुति की। इससे भगवान् उनके बीच प्रकट को गये। किंतु भगवान् की इस छविको केवल भगवान् शङ्कर और ब्रह्माजी ही देख सके। ब्रह्मा और देवताओं ने अपनी दुःखद परिस्थिति उनके सामने रख दी कि स्थिर लाभके लिये तुम लोग दैत्यों से संधि कर लो ताकि समुद्र मथा जा सके। उस मन्थनसे हमें अमृतरूप औषध निकालना है। यह कार्य अकेले तुम लोगों से नहीं हो सकेगा, उस दिव्य रसके उपयोग से तुम भी बल-वीर्य सम्पन्न हो जाओगे और मरकर भी फिर जी उठोगे। तब दैत्य स्वयं तुमपर आक्रमण करने से कतराने

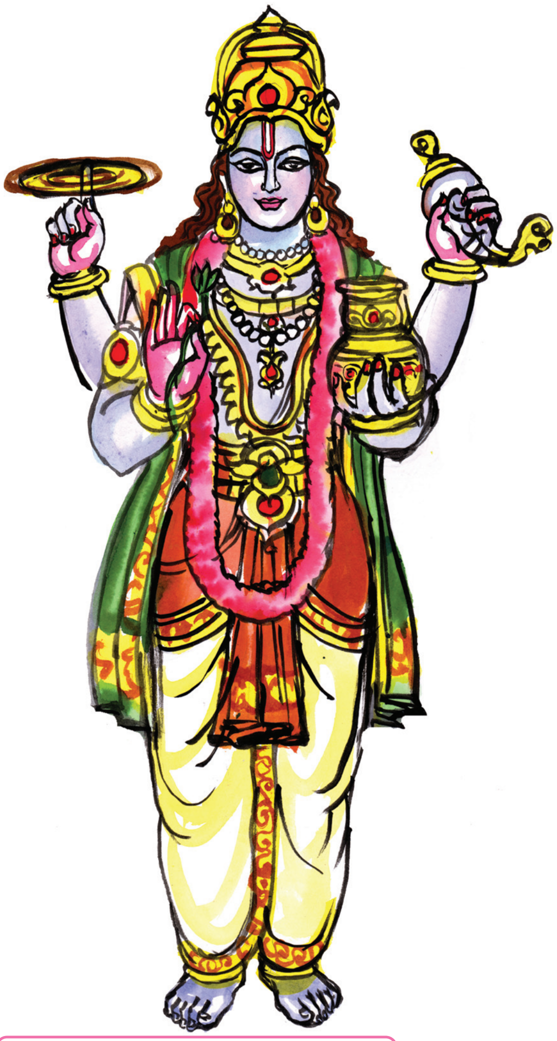

लगेंगे। इसलिये तुम लोग दैत्यों के साथ संम्पूर्ण औषाधियाँ लाकर अमृत के लिये क्षीरसागर में डालो। इस मन्थन से औषधियों का सारभूत अमृत आदि लोकोपकारक वस्तुएँ निकल सकेंगी। इस मन्थन में मन्दराचलको मथानी बनाया जायगा और वासुकि नागको नेति। इन सब उपकरणोंको शीघ्र ही जुटाओ। देवताओं और दानवोंने नाना प्रकारकी औषाधियाँ लाकर क्षीरसागर में डालीं और मन्थन प्रारम्भ हुआ।

औषाधियों के मन्थन से जो रस तैयार होगा, उस अनुपातके संतुलित मिश्रण के लिये अपने अंशसे धन्वंतरि के रुप में अवतीर्ण होकर समुद्र में अदृश्य- रुप सें वे प्रविष्ट हो गये। वहाँ उन्होंने औषधियों में रसका उचित अनुपात में मिश्रणकर उसे अमृत का रूप प्रदान किया। उस सम्मिश्रण में वे इतने दत्तचित हुए कि जब अमृतमय कलश लेकर बाहर प्रकट हुए तो उनके मुख से भगवान् विष्णु के नामों का जप और आरोग्य के साधक औषधों के नाम का भी उच्चारण हो रहा था। इतनी तन्मयता से धन्वंतरि ने उस दिव्य औषध को निकाला।

किंतु दैत्य तो दैत्य ही होते हैं। उन्होंने अमृत के उस कलश को हथिया लिया। देवता विषादसे भर गये और फिर उन्होंने भगवान् की शरण ली। फिर भगवान् ने अपनी मायासे दैत्योंको मोहितकर देवताओं को अमृत पिला दिया और स्वयं वैकुण्ठधाम चले गये।

इस प्रकार देवताओं के सबल हो जानेपर सूर्य-ग्रह-नक्षत्रादि आकाश के गोलकोंने अपनी गति में नियमितता पा ली। संसार फिर सुखी-सम्पन्न होकर उल्लास से भर गया।

औषध का प्रयोग फिर जनता के महान् पालक अश्विनीकुमारों के हाथ में आ गया। बहुत काल बाद मनुष्यलोक में जब रोगों ने अपने पाँव फैलाये और पृथ्वी के प्राणी फिर दीन-दुःखी होने लगे, तब भगवान् नारायण श्रीविष्णुने अंशांशारुप में जो अपना अवतार धन्वंतररिरूप में लिया था, उस धन्वंतररिरूप से राजा धन्त के यहाँ पुत्र रूप में आविर्भूत हुए; क्योंकि राजा धन्वने इन्ही अब्ज धन्वंतरि को पुत्र रूप से पानेके लिये तप किया था। गर्भावस्था में ही अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त हो गयी थीं। विष्णु के अंशांशरूप में अवतीर्ण भगवान् धन्वंतरि ने आयर्वेद को आठ

अङ्गो में बाँट दिया। वे आठ अङ्ग इस प्रकार है कायचिकित्सा, बालचिकित्सा, ग्रहचिकित्सा, ऊर्ध्वाङ्गचिकित्सा, शल्यचिकित्सा, दंष्ट्रचिकित्सा, जराचिकित्सा तथा वृषचिकित्सा।

परम्परा की स्थापना -

जिस तरह पितामह ब्रह्माने दक्ष प्रजापति को, भगवान् शङ्कर ने शुक्राचार्य को आयुर्वेद पढ़ाकर परम्परा की स्थापना की थी, उसी प्रकार भगवान् श्रीविष्णु ने गरुडजी को आयुर्वेद पढ़ाकर परम्परा चलायी।

गरुड ने धन्वंतरि को आयुर्वेद पढ़ाया। इस तरह आयुर्वेदस्वरूप भगवान् विष्णु ने आवश्यकता पड़नेपर अयुर्वेद से प्राणियों को सुखी - सम्पन्न बनाया।

धन्वंतरि का स्वरूप और मंत्र जाप विधान :

धन्वंतरि भगवान विष्णु का ही स्वरुप है। चतूर्भुज है, ऊपरकी दोनो भूजाओं में शंख और चक्र धारण किये हैं, जब कि दो अन्य भूजाओं में से ओकमें जलु का औषध और दुसरे में अमृत कलश धारण किया है। उनका आसन कमल है, और गुरु गरुडजी है। धन्वंतरि की प्रिय धातु पीतल है। इसलिए धनतेरस को पीतल आदि के बरतन खरीदने की परंपरा है। इनके वंश में दिवोदास हुए, जिन्होंने ''शल्यचिकित्सा'' का पहला विद्यालय काशीमें स्थापि किया, जिसके प्रधान आचार्य सुश्रुत थे। सुश्रुत दिवोदास के शिष्य और विश्वामित्र के पुत्र थे। उन्होंने संहिता लिखी, जो सुश्रुत-संहिता के नाम से प्रचलित हुई। सुश्रुत विश्व के पहले सर्जन (शल्य चिकित्सक) थे।

धन्वंतरि का जप मंत्र -

इस संसार में मानव को शरीर की रक्षा के लिये, हमारे आरोग्य की रक्षा के लिये धन्वंतरि मंत्र का जप और उपासना करनी चाहिए।

धन्वंतरि साधना का साधारण मंत्र

ॐ धन्वंतरये नमः।।

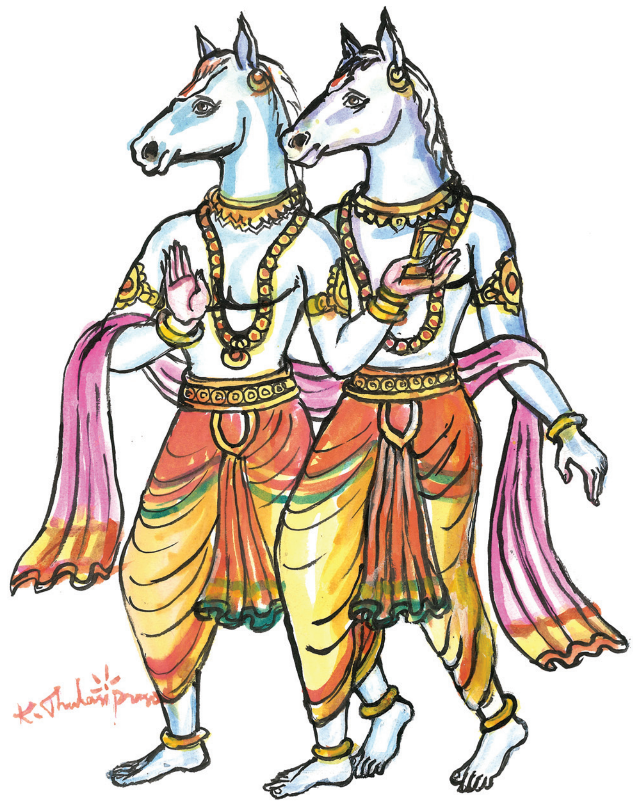

विशेष मंत्रः

ॐ नमो भगवते महासुदर्शनाय वासुदेवाय धन्वंतराये, अमृत कलश हस्ताय, सर्वभय विनाशाय, सर्वरोग निवारणाय, त्रिलोकपताय, त्रिलोकनाथाय श्री महाविष्णु स्वरुप, श्री धन्वंतरि स्वरुप, श्री श्री श्री अष्टचक्र नारायाणाय नमः।।

दुनिया के तमाम चिकित्सक श्री धन्वंतरि की उपासना करते हैं। तो आइये, धन्वंतरि जयंति के अवसर पर हमारी स्वस्थता के लिए, परिवार की, राज्यकी, विश्व की स्वस्थता के लिए उस मंत्र से हम सब भगवान धन्वंतरि को नमन करते हैं।

जय श्रीमन्नारायणाय...

दक्षिण भारत के श्री रंगम मंदिर के बहारी भाग में धन्वंतरि भगवानकी नित्य पूजा होती है और दर्शनार्थी को नित्य हर्बल तीर्थ प्रसाद बाँटे जाते हैं। कांचीपूरम् के वरदराज मंदिर में, पोंडीचेरी में सभी जगह धन्वंतरि मूर्ति की नित्य पूजा आराधना होती है।

महिमान्वितं - मार्गशीर्ष

- श्रीमती वी क़ेदारम्मा
मोबाइल - ८९८५२३९३१३

“**मा**सानां मार्गशीर्षोऽहं” - ऐसा गीताचार्य ने भगवद्गीता में कहा। साक्षात् परमात्मा के मुख से निकला वाक्य है यह। इससे हमें यह ज्ञात होता है कि मार्गशीर्ष कितना महिमान्वित है। यह वर्ष का नौवाँ मास है। मार्गशिर और पुष्यमास, हेमंत ऋतु के हैं। इस ऋतु का पूर्वार्ध मार्गशिर है। मार्गशिर-मास एक विशिष्ट मास है; ऐसा कहने के लिए अनेकों कारण हैं।

महाभारत के काल में संवत्सर का प्रारंभ मार्गशिर मास से ही होता था; ऐसा विदित होता है। इस मास का एक और नाम “अग्रहायनिका” भी है। प्रस्थानत्रय में से एक भारतीयों का अति मुख्य भगवद्गीता का आविर्भाव मार्गशिर शुक्ल एकादशी के दिन हुआ। भागवत में हेमन्त ऋतु का वर्णन मनोहर ढंग से किया गया। मार्गशिर मास के प्रथम दिन से प्रारंभ करके, गोपवनिताएँ महीने भर कात्यायनी व्रत का आचरण करती हैं। हमें तिरुप्पावै प्रदान करनेवाली माता आँडाल इस व्रत का आचरण करके श्रीरंगनाथ की पत्नी बनी। वर्षारंभ में याने चैत्र, वैशाख मासों में उगने वाले जुआर, बाजरा, मूँग, तुअर, चना, धान इत्यादि की फसलें घर आने से किसान लोग खुश हो जाते हैं। अन्नदाता (किसान) का सुख ही अखिल जनों के सुख का मूल है।

मृगशिरा नक्षत्र युक्त पूर्णिमा जिस मास में रहती है, वह मार्गशिर मास है। कार्तिक मास में प्रवेश करने वाली ठंड इस मास के अन्त तक अधिक बढ़ जाती है। बुजुर्ग लोग कहते हैं कि मार्गशिर मास में ठंड ज्वाला में गिरने पर भी नहीं जाती, याने कडी धूप लगने पर भी ठंड नहीं जाती। इस मास में किये जाने वाले उपवास, व्रत आदि पुण्यप्रद हैं; ऐसा व्रत-गंथ घोषित करते हैं। मार्गशिर मास में आचरण किये जाने वाले व्रतों में से “सुब्रह्मण्य-षष्ठी” एक है। तमिल लोग इसे “स्कंद षष्ठी” कहते हैं। साधारण लोग इसे “सुब्बाराय षष्ठी” के नाम से व्यवहृत करते हैं। इस दिन सुब्रह्मण्यस्वामी की पूजा-अर्चना करने के साथ-साथ चंपाषष्ठी, फलषष्ठी, प्रावरणषष्ठी व्रतों का आचरण करना चाहिए; ऐसा व्रत-ग्रंथ घोषित करते हैं। प्रावरण का अर्थ उत्तरीय है। प्रावार का एक अर्थ कंबल भी है। दान, सनातन धर्म का एक

प्रधान अंश है। हो सकता है कि ठंड अधिक होनेवाले इस महीने में दुपट्टे, कंबल आदि का दान करना, इस प्रावरण-षष्ठीव्रत का मुख्य उद्देश्य है।

स्कंद, कार्तिकेय, षण्मुख, गुह आदि सुब्रह्मण्य के पर्यायवाची नाम हैं। तेलुगु प्रदेश के अनेकों प्रांतों में इस दिन उपवास-व्रत रखते हैं। सुबह ही सुब्रह्मण्येश्वर स्वामी के मंदिर में जाकर अन्य पूजा-द्रव्यों के साथ-साथ फण भी समर्पित करते हैं। नाग पंचमी, नाग चतुर्थी के अवसर पर जिस प्रकार सर्प-पूजा संपन्न करते हैं, उसी प्रकार सर्प-पूजा संपन्न करते हैं। तमिल लोग भी नियम-निष्ठाओं के साथ स्कंदषष्ठी का आचरण करते हैं।

मार्गशिर-शुक्ल सप्तमी को ''मित्र सप्तमी'' कहते हैं। इस दिन भगवान सूर्य की पूजा करनी चाहिए; ऐसा व्रत-ग्रंथ कहते हैं। मार्गशिर अष्टमी के दिन

''काल भैरवी'' की पूजा करनी चाहिए। इस अष्टमी का ''कालभैरवाष्टमी'' नाम भी है। इसके, महेश्वराष्टमी, सौम्याष्टमी, भीष्माष्टमी, भद्राष्टमी इत्यादि नाम भी हैं। किसी समय, ब्रह्म और शिव जी के बीच अपनी-अपनी महत्ता के बारे में तगादा उत्पन्न हुआ। उस दिन मार्गशिर शुक्ल अष्टमी थी। शिव ने कालभैरव का सृजन करके ब्रह्म का सिर काटने का आदेश दिया; ऐसा कहाजाता है। शिव जी के आदेश का पालन करने वाले कालभैरव को ब्रह्म-हत्या का पाप लग गया। तीर्थयात्राओं पर जाने वाला कालभैरव खूब थक गया और अन्त में काशी-क्षेत्र में पातक से विमुक्त हुआ; ऐसा कहा जाता है। उस दिन से काशी-क्षेत्र में कालभैरव स्थिर रहकर प्रथम पूजाएँ स्वीकार कर रहा है। ''काशी पुराधिनाथ कालभैरवं भजे'' - मकुट से शंकराचार्य का रचित ''कालभैरवाष्टकं'' सुप्रसिद्ध ही है।

मार्गशिर शुक्ल एकादशी को ''मोक्षैकादशी'' कहते हैं। मार्गशिर शुक्ल द्वादशी के दिन सात पहाडों वाले

वेंकटेश्वरस्वामी की पुष्करिणी में पृथ्वीभर के सारे तीर्थ प्रवेश करते हैं; ऐसा लोग कहते हैं। इसीलिए इस दिन स्वामी की पृष्करिणी में स्नान करना पुण्यप्रद है; ऐसा भक्तों का विश्वास है। मार्गशिर-पूर्णिमा का एक और नाम ''महामार्गशीर्ष'' भी है। इस दिन के अवसर पर ''नरक-पूर्णिमा व्रत'' का आचरण करना चाहिए; ऐसा ''चतुर्वर्ग चिंतामणि'' से ज्ञात होता है। वैद्यशास्त्र के अनुसार कार्तिक-पूर्णिमा से लेकर मार्गशिर-पूर्णिमा तक के दिनों को ''यम दंष्ट्र'' कहते हैं। इसलिए इस काल में व्रतों तथा उपवासों का आचरण करने का नियम बुजुर्ग लोगों ने लागू किया। इनका एक प्रधान कारण आरोग्य से संबंधित है।

अवतार पुरुष दत्तात्रेय स्वामी का आविर्भाव मार्गशिर-पूर्णिमा के दिन हुआ। अनसूया देवी-अत्रि महर्षि का पुत्र दत्तस्वामी, त्रिमूर्ति-स्वरूप है; ऐसा कहा जाता है। स्मरण मात्र से भक्तों का उद्धरण करनेवाले उस स्वामी का सेवन आन्ध्र लोगों के साथ-साथ महाराष्ट्र के लोग भी बड़ी भक्ति व निष्ठा के साथ करते हैं। उदुंबर वृक्ष, दत्तात्रेय का प्रीतिदायक वृक्ष है। उनका निवास-स्थान उदुंबर वृक्ष के मूल में बैठ कर दत्तात्रेय-मंत्र का पठन करने पर संकल्प-सिद्धि प्राप्त होती है; ऐसा दत्त भक्तों का विश्वास है।

मार्गशिर मास में ही धनुष का, धारण करते हैं। यही धनुर्मास है। सूर्य भगवान मेषादि द्वादश राशियों में संचरण करता है। संक्रांति का अर्थ पहुँचना है। सूर्य के प्रत्येक राशि में प्रवेश करने के काल को संक्रांति कहते हैं। संक्रांति-पर्व का सारा संरंभ धनुस्संक्रमण से ही प्रारंभ होता है। याने सूर्य के धनु-राशि में प्रवेश करने के दिन से त्यौहार का वातावरण बना रहता हैं। धनुस्संक्रमण को ही ''षडशीति-पुण्यकाल'' कहते हैं। धनुर्मास में तेलुगु राज्य शोभायमान दिखते हैं। बालिकाएँ तडके ही उठकर आँगन को साफ-सुथरा करके रंगवल्लियों से सजाती हैं। गोमय (गाय का गोबर) से गोब्बियाँ तैयार करके उन्हे धान का आटा, फूल, कुंकम व हल्दी से अलंकृत करके रंगवल्लियों के बीच रख देती हैं। गोब्बियों के चारों ओर वलयाकार में घूमती गाने गाती हैं।

उपनिषत्सार भगवद्गीता का आविर्भाव मार्गशिर-शुक्ल एकादशी को हुआ। गीता, कृष्णार्जुनों का संभाषण मात्र ही नहीं है, बल्कि प्रत्येक व्यक्ति का हृदय-संभाषण है। परमात्मा पर विश्वास बना रहना है। साधारणतया अवतार-पुरुषों तथा महात्माओं की जयंतियाँ हम मनाया करते हैं। किन्तु किसी ग्रंथ की जयन्ती मनायी जाती है तो वह है गीता-जयन्ती (गीता की जयंती)। इतने पर्वों से विराजित मार्गशीर्ष-मास कितना ही महिमान्वित है।

स्वस्ति

श्री वैकुंठ एकादशी

- श्री ज्योतिन्द्र के अजवालिया
मोबाइल - ९८२४९१३६३६

भारत विविधताओं और एकता का देश है। जहाँ हर राज्य की एक अलग-अलग धार्मिक मान्यताएँ और उससे जुडा हुआ रीति-रिवाज है। सारे धार्मिक त्यौहार धूमधाम से मनाये जाते हैं, जिनकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। आज हम ऐसे एक वैष्णव त्यौहार की बात करने जा रहे हैं, ''वैकुंठ एकादशी'' का त्यौहार सब वैष्णव लोग बडी धूमधाम से मनाते हैं। हिंदु कैलेन्डर के अनुसार धनुर्मास के शुक्ल पक्ष में वैकुंठ एकादशी का त्यौहार आता है। अंग्रेजी मास के अनुसार दिसंबर और जनवरी के बीच के महीने में शुक्ल पक्ष की एकादशी को वैकुंठ एकादशी कहा जाता है। इस दिन सारे वैष्णव लोग भगवान विष्णु की पूजा-अर्चना करते हैं और उपवास व्रत रखते हैं, ऐसा माना जाता हैं कि अगर आप साल भरकी हर एकादशी व्रत रखते हो, तो साल की २३ एकादशी के बराबर वैकुंठ एकादशी का व्रत है।

आइये जानते हैं कि क्यों यह एकादशी इतनी महत्वपूर्ण है और क्यों इसे वैकुंठ एकादशी के नाम से जाना जाता है। साथ ही इसे मनाने का आध्यात्मिक महत्व भी जानेंगे।

वैकुंठ एकादशी की दिलचस्प कहानी

वैकुंठ एकादशी के पीछे दिलचस्प कहानी है। मुरण नाम का दानव था, जो देवतागण को बहुत परेशान करता था। एकबार देवता पर आक्रमण किया तो देवतागण बहुत परेशान हो गये, जिस की वजह से देवता, भगवान शिव के पास मदद माँगने गये। लेकिन भगवान शिव ने उन्हें विष्णु जी के पास जाने को कहा, क्योंकि भगवान श्रीहरि विष्णु के पास वह हथियार था, जिससे मुरण असुर को हराया जा सकता था। देवतागण मिल के श्री विष्णुजी के पास गये और मुरण असुर का सब वृतांत सुनाया। यहाँ श्रीहरि विष्णु भगवान आराम कर रहे थे, तो मुरण असुर ने विष्णु जी को मारने की कोशिश की, इसी समय विष्णुजी के शरीर से स्त्री-

ऊर्जा निकली और मुरण को जलाकर राख में बदल दिया, जिस के बाद स्त्री-उर्जा का नाम रखा गया, ''एकादशी'' और वरदान दिया कि इस दिन जो भी व्रत रखेगा, उसे सीधे वैकुंठ में स्थान मिलेगा। श्रीहरि विष्णुजी आराम कर रहा था, इस क्षेत्र का नाम बद्रीकाश्रम पडा। वैकुंठ का मतलब क्या है? विष्णुजी और महालक्ष्मी का निवास स्थान है। इसे वैकुंठ कहा जाता है। वैकुंठ का अर्थ है जहाँ किसी भी चीज की कमी नहीं है। जहाँ हर चीज जीवंत है, जहा अहंकार समाप्त हो जाता है और जीवात्मा वहाँ पहुँचते हैं, तो अपने आपको पूरी तरह विष्णुजी को समर्पित कर देते हैं। इस एकादशी व्रत करने से जीवात्मा वैकुंठ-लोक प्राप्त कर लेते हैं। जन्म-मरण के फेरे से बचकर प्रभु की शरणागति मिल जाती है। इसलिए इस एकादशी को वैकुंठ एकादशी कहा गया है।

ऐसी मान्यता है कि, जो भी मनुष्य, श्रीवैष्णव वैकुंठ एकादशी का व्रत करते हैं, इस दिन वैकुंठ का द्वार सब जीवात्मा के लिए खुल्ला रहता है। इस एकादशी का व्रत करते हैं, तो जीवात्मा को सीधा वैकुंठ प्राप्त होता है। शास्त्र में कहा गया है कि, जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीता का नित्य पाठ करता है, विशेष रूप से वैकुंठ एकादशी के दिन गीताजी का अध्ययन करता है और उसकी शिक्षा दूसरों को देता है, उसके लिये वैकुंठ का द्वार अपने आप खुल जाता है। जब कोई व्यक्ति ज्ञान, भक्ति और कर्मयोग में लीन हो, जाता है तो उसके लिये भी वैकुंठ के द्वारा खुल जाते हैं। एक ऐसी भी कथा मिलती हैं कि, देवता और असुरों द्वारा समुद्र-मंथन किया गया था। देवता सकारात्मक ऊर्जा और असुर नकारात्मक ऊर्जा के प्रतीक हैं। मंथन से निकले हुए विष ने मानव को नकारात्मक ऊर्जा में लपेट लिया है। जो भी मानव सकारात्मक ऊर्जा मन में रखकर, वैकुंठ एकादशी का व्रत करते हैं, तो उनकी नकारात्मक ऊर्जा क्षीण हो जाती है तब मानव वैकुंठ के अधिकारी बनते हैं।

वैकुंठ एकादशी, मुक्कोटी एकादशी के नाम से भी जानी जाती है।

वैकुंठ एकादशी का महोत्सव

दक्षिण भारत के सभी विष्णु-मंदिरों में और भारत भर के विष्णु मंदिरों में वैकुंठ एकादशी व्रत की पूजा-आराधना होती है। विशेष रूप से आन्ध्र के तिरुपति मंदिर, श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ स्वामी-मंदिर में यह उत्सव पूरे विधि-विधान से मनाया जाता है। भगवान का विशेष रूप से दिव्य औषधियों से अभिषेक किया जाता है। कपुर-आरती, भोग-प्रसाद, फूल-तुलसी माला अर्पित की जाती है। वस्त्र अलंकार से सज्जित भगवान वेंकटेशजी का रूप मनमोहक होता है। चारों ओर दीपमालायें होती हैं और भगवान का दर्शन होता है। इस दर्शन मात्र से भक्त वैकुंठ का अधिकारी बनता है।

एकादशी की व्रत-विधि :

एकादशी के दिन सुबह में पवित्र स्नानादि कर्म पूर्ण करके, हमारे पूजा मंदिर में श्री विष्णु भगवान और श्री महालक्ष्मीजी का षोडशोपचार पूजन करने का विधान है। साधक और भक्त-श्रीवैष्णव को पूरे दिन और रात का उपवास रखने का विधान शास्त्र ने बताया है। पूजन विधि में षोडशोपचार विधि के बाद श्रीहरि विष्णु भगवान को सहस्र नाम उच्चारण के साथ चरणों में तुलसी दल अर्पण करने से और श्री लक्ष्मीस्तोत्र से महालक्ष्मीजी को गुलाब अर्पण करने से श्री लक्ष्मीनारायण की अविरल कृपा श्रीवैष्णव पर बरसती है।

श्री वैकुंठ एकादशी व्रत में अनुष्ठान करने से बहुत लाभ प्राप्त होता है। शास्त्रों के अनुसार वैकुंठ

एकादशी वर्ष में आनेवाला एकमात्र ऐसा दिन है जब भगवान विष्णु अपने दिव्य निवासस्थान वैकुंठ में प्रवेश करने की हम को अनुमति देते हैं, जहाँ वे देवी महालक्ष्मी के साथ प्रचुरता याने समृद्धि-सहित निवास करते हैं।

इस पवित्र दिन श्री लक्ष्मी सहित श्री विष्णु भगवान का आह्वान करके धन व समृद्धि प्राप्त कर सकते हैं।

१) श्री पद्मनाभ यज्ञ

शास्त्र की रीति के अनुसार इस दिन पद्मनाभ यज्ञ करने से साधक को भौतिक समृद्धि, उत्तम संतान की प्राप्ति हो सकती है तथा विवाह एवं धन-संबंधी मुश्किलें भी दूर हो सकती हैं। भगवान विष्णु का यही रूप साधक को मोक्ष प्रदान करता है।

२) श्री पुरुषसूक्तम् व तिरुप्पावै स्तोत्र अनुष्ठान

श्री पुरुषसूक्तम एवं तिरुप्पावै (श्री विष्णुभगवान की प्रशंसात्मक स्तुति) का पाठ करने से मनोवांछित जीवनसाथी की प्राप्ति हो सकती है, संबंधो में आनेवाली समस्याएँ दूर हो सकती हैं तथा समग्र रूप से समृद्धि, सुख, दिर्घायु और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

३) भगवान पद्मनाभ को तुलसी-माला अर्पण

मंदिर से जुडी पौराणिक कथाओं के अनुसार भगवान विष्णु को तुलसीमाला एवं सहस्र नाम से तुलसी दल अर्पण करने से धन की कमी और शारीरिक पीडायें दूर हो सकती हैं।

४) भगवान विष्णु को चंदन से लेप करके अभिषेक करने से हमें स्वास्थ्य और उत्तम भाग्य की प्राप्ति हो सकती है।

५) वैकुंठ एकादशी के दिन गौ-पूजा करने से प्रचुर मात्रा में धन समृद्धि प्राप्त हो सकती है।

६) द्वादशी के दिन ३ वैदिक पूजारी और वैदिक बालकों को अन्नदान करने से शिक्षा-संबंधी मुश्किलें दूर होकर, पूर्व जन्म का पाप नष्ट हो सकता है।

एकादशी व्रत विधि के बाद पारणा-विधि

एकादशी के दिन उपवास करने का विधान है। व्रत को समाप्त करने की विधि को 'पारणा' कहते हैं। द्वादशी विधि के दिन सूर्योदय के बाद पारणा किया जाता है। स्वास पर ध्यान रहे, द्वादशी तिथि पूर्ण होने से पहले पारणा करना अति आवश्यक है। द्वादशी तिथि के भीतर पारणा न करना पाप के समान है।

एकादशी व्रत का पारणा हरिवासर के दौरान भी नहीं करना चाहिए। जो श्रद्धालु व्रत करते हैं, उन्हें व्रत तोडने से पहले हरिवासर समाप्त होने की प्रतीक्षा करनी चाहिए। हरिवासर समय, द्वादशी तिथि की पहली एक चोथाई अवधि है। व्रत तोडने के लिये सब से उपयुक्त समय प्रातःकाल होता है। व्रत करनेवाले श्रद्धालु को मध्याहृन के दौरान व्रत तोडने से बचना चाहिए। कुछ कारणों से अगर कोई प्रातःकाल पारणा करने में सक्षम नहीं तो उसे मध्याह्न के बाद पारणा करना चाहिए।

सूचनाः- जो दो दिन एकादशी आती है, तो हम श्रीवैष्णवों को नित्य (दूसरे दिन) दूसरी एकादशी को व्रत करना चाहिए।

तो आईये, हम सब, मोक्ष प्राप्ति के लिये और शरणागति के लिये परिवार-सहित वैकुंठ एकादशी का व्रत करके जीवन को धन्य बनायें।

श्रीमद्भगवद्गीता - विशेषताएँ

- डॉ.के.एम.भवानी
मोबाइल - ९१४१३८०२४६

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिःध्रुवा नीतिर्मतिर्मम।।

अर्थात्, जहाँ भगवान कृष्ण और गांडीवधारी अर्जुन रहेंगे, वहाँ सारी संपत्तियाँ, सकल ऐश्वर्य, समस्त विजय और स्थिर नीति रहती हैं। इसमें कोई संदेह नहीं।

भगवद्गीता यानी भगवान से खुद किया गया गान। रामायण और महाभारत जैसे इतिहास वाल्मीकि और वेदव्यास से लिखे गए थे। कई महान भक्तों के द्वारा भगवान का गुणगान करते हुए भजन-कीर्तन आदि लिखे गए थे। भगवान की महिमा को बताते हुए वेद, पुराण और उपनिषद् आदि भी लिखे गए, लेकिन भगवद्गीता ही सिर्फ एक महान और पवित्र ग्रंथ है, जो खुद भगवान से बताया गया है। इसीलिए माना जाता है कि दुनिया में भगवद्गीता के समान पवित्र ग्रंथ दूसरा नहीं है।

भगवद्गीता कब और किसे बताई गई?

कौरव और पांडवों के बीच में शांति और संधि के लिए किए गए सारे यत्न विफल हो गए हैं। तब युद्ध अनिवार्य हो गया है। कौरव और पांडवों की सम्मति से कुरुक्षेत्र को रण-क्षेत्र मान लिया गया है।

कुरुक्षेत्र ही क्यों? कुरुक्षेत्र अत्यंत पवित्र प्रदेश है। प्राचीन काल में भरत वंश के कुरु नामक राजा ने वहाँ कई यज्ञ किए और अपने यज्ञों से प्रसन्न देवताओं से कुरुक्षेत्र में मरनेवालों को मोक्ष प्राप्ति होने का वर पाया। इसीलिए कुरुक्षेत्र को रणक्षेत्र मान लिया गया है। भगवद्गीता का पहला श्लोक भी इसी तरह शुरू होता है -

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः।
मामकाः पाण्डवाश्चैवा किमकुर्वता सञ्जय।।

युद्ध के आरंभ के पहले सारे वीर आकर रणभूमि में खड़े हो गए। श्रीकृष्ण सारथी बनकर अर्जुन का रथ चला रहा था। रण क्षेत्र के बीच में रथ के रुकते ही अर्जुन की नज़र सामने खडे वीरों पर पडी, जो अब शत्रु सेना में हैं, पर, वे सब उनके मामा, दादा, भाई, पुत्र लगते थे। उन्हें देखते ही अर्जुन के मन में वैराग्य भावनाएँ जागृत हुईं। उसे लगा कि इतने लोगों को मारकर कमाया जानेवाला राज्य क्या कभी सुख दे सकता है? यह विचार आते ही अर्जुन ने कृष्ण से कहा-

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा। (१-३२)

आचार्याः पितरः पुत्रा स्तथैव च पितामहाः।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः शल्याः संबंधिनस्याधा।।

इस तरह विचार करनेवाले अर्जुन को विभिन्न बातों के द्वारा फिर युद्धोन्मुख करना ही भगवाद्गीता है। इस संदर्भ में खुद भगवान

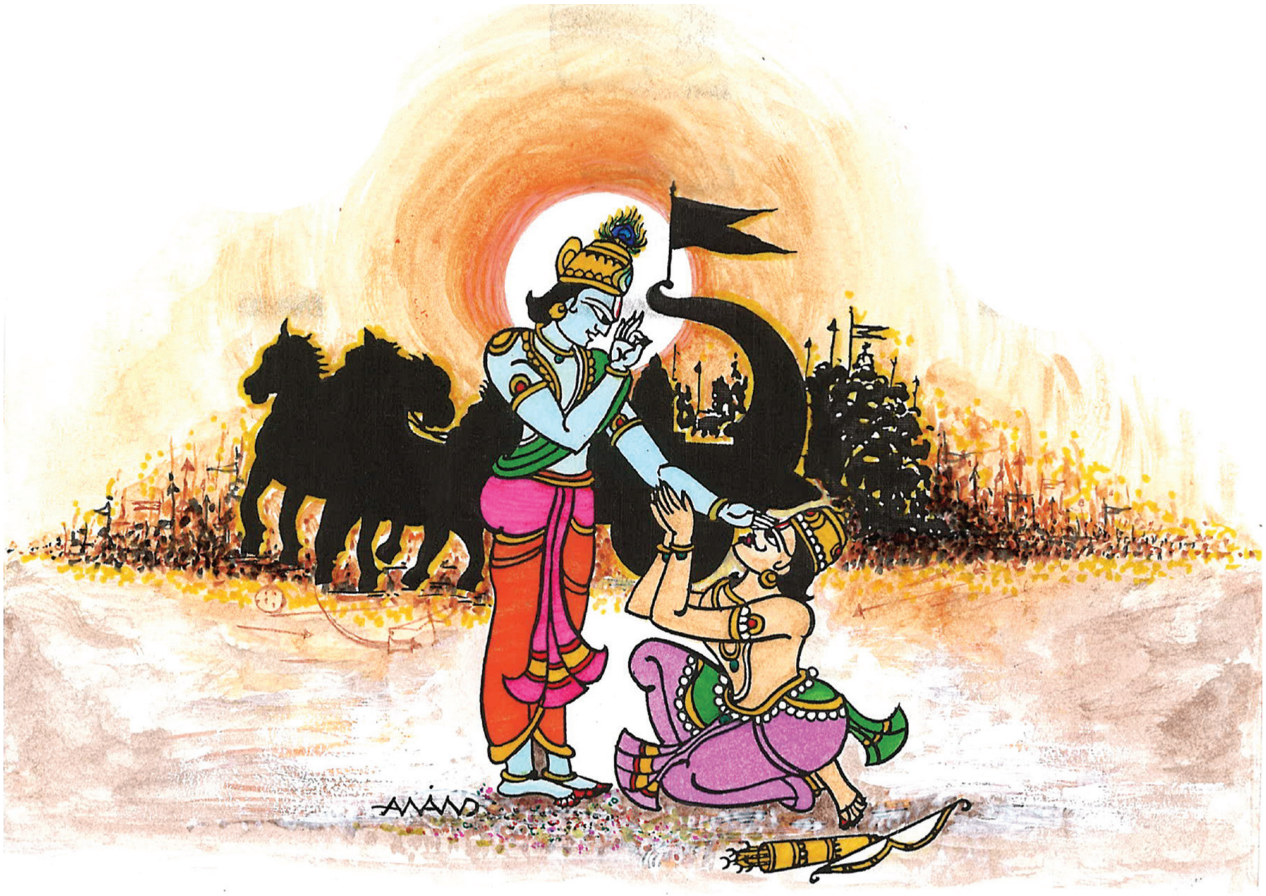

श्रीकृष्ण ने जगद्गुरु बनकर अर्जुन के माध्यम से लोगों को कर्तव्य करने की प्रेरणा दी। वह दिन मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी था, जो 'गीता जयंती' के नाम से प्रसिद्ध है।

गीता जयंती के बारे में : भगवान श्रीकृष्ण वे भगवद्गीता में प्रकृति की हर चीज में अपने अस्थित्व को बताते हुए खुद कहा था-

मासानाम् मार्गशीर्षोऽहम।

इसीलिए भगवान का प्रतिरूप समझे जानेवाला मार्गशीर्ष शुक्ल एकादशी के दिन गीता का उदय हुआ। श्रीमद्भगवद्गीता में (१८) अठारह अध्याय हैं, जो अर्जुन विषादयोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग आदि नामों से जाने जाते हैं। इस में करीब सात सौ (७००) श्लोक हैं। इसमें सौ से ज्यादा श्लोक संजय आदि के प्रश्नोत्तर, वर्णन, विमर्श आदि हैं। कृष्ण के उपदेश श्लोक करीब (६००) छह सौ से कम ही होंगे।

मान्यों का कहना है कि हमारा शरीर ही धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्र के समान है। हमारे अंदर के सद्गुण पांडव और कौरव दुर्गुणों के समान है। दोनों के बीच में होनेवाला संघर्ष ही महाभारत युद्ध है। भगवान हमेशा सज्जनों के पक्ष में रहकर दुर्जनों का दमन करता है। यही बात खुद भगवान कृष्ण ने गीता में भी बताया था-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।। (४-८)

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।। (४-७)

तब अर्जुन को युद्धोन्मुख करते हुए कृष्ण ने उससे इस तरह कहा-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतु र्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।। (२-४७)

अर्थात् मानव को कर्म करने का अधिकार है, लेकिन उसका परिणाम उसके हाथों में नहीं है। इसीलिए हमें कर्म करना छोड़ना नहीं है, लेकिन उसके फल के बारे में न सोचकर निस्वार्थ भावना से कर्तव्य बुद्धि से काम करना है।

जब अर्जुन यह सोचकर बहुत दुःखित हो जाता है कि युद्ध में लाखों लोग मारे जाएँगे, तो तब कृष्ण ने उससे यह कहा-

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।
जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।

अर्थात् आत्मा अमर है। उसे न शस्त्र मार सकते हैं, न आग जला सकती है। पानी न भिगा सकता है। हवा बुझा सकता है। इसीलिए हे अर्जुन, मानव सिर्फ शरीर छोड़ता है, लेकिन आत्मा हमेशा अमर ही रहता है। जिस तरह मानव जीर्ण वस्त्रों को छोडकर, नए वस्त्र पहनते हैं उसी तरह आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नए शरीर में प्रवेश करता हैं। इसीलिए हे अर्जुन! दुनिया में जो भी पैदा होंगे, उन्हें एक-न-एक दिन जरूर मरना है और मरनेवाला हर आदमी फिर नए शरीर में पैदा होता है। यह अनिवार्य है। इसके लिए दुःखित नहीं होना है।

कृष्ण ने अर्जुन को यह भी समझाया कि हर आदमी को अपने कर्तव्य का पालन करना जरूरी है। अपने धर्म को कभी नहीं छोड़ना है। क्षत्रिय होने के नाते युद्ध करना अर्जुन का कर्तव्य है। उसे किसी भी हालत में उसे नहीं छोड़ना है।

श्रेयान स्वधर्मो विगुणः परधर्मात स्वनुष्टितात।
स्वधर्मे निधनम् श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

इस तरह सब कुछ बताने के बाद कृष्ण अंत में अर्जुन से कहता है -

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

अर्थात् समस्त कर्तव्य और कर्मों को मुझे समर्पित करो। मैं सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर हूँ। इसलिए मेरी शरण में आओ। मैं तुम्हें समस्त पापों से मुक्त करूँगा। तुम शोकातुर मत हो जाओ।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः।।

मेरा भक्त बनकर इस गीतोपदेश को, अर्थात् गीताशास्त्र को जो भक्त मन में स्थिर रखेंगे, वे जरूर मुझे पायेंगे। इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है।

भगवान से खुद किये गये इस गीतागान की विशेषता को बताते हुए महाभारत में वेदव्यास ने इस तरह लिखा-

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

भगवद्गीता को दुनिया के हर आदमी पढ़ सकता है। इसके लिए जात-पाँत, स्त्री-पुरुष आदि का भेद भाव नहीं है। भक्ति से इस गीता का पारायण करने का आदेश भगवान ने अपने भक्तों को दिया।

गीता का महत्व : 'वराह पुराण' में गीता के महत्व के बारे में इस तरह बताया गया है

गीतायाः पुस्तकम् यत्र-यत्र पाठः प्रवर्तते।
तत्र सर्वाणि तीर्थानि प्रयागादीनि तत्र वै।।
यत्र गीता विचाराश्च पठनं पाठनं श्रुतम्।
तत्राहम निश्चितं पृथ्वी निवासामि सदैव हि।।
अध्याय श्लोक पाद्म वा नित्यम यः पठते नरः।
स याति नरताम् यावन्मनुकालं वसुंधरे।।

।। सर्वम् श्रीकृष्णार्पणमस्तु ।।

महा योगीश्वर दत्तात्रेय

- श्री के.रामनाथन
मोबाइल - ९४४३३२२२०२

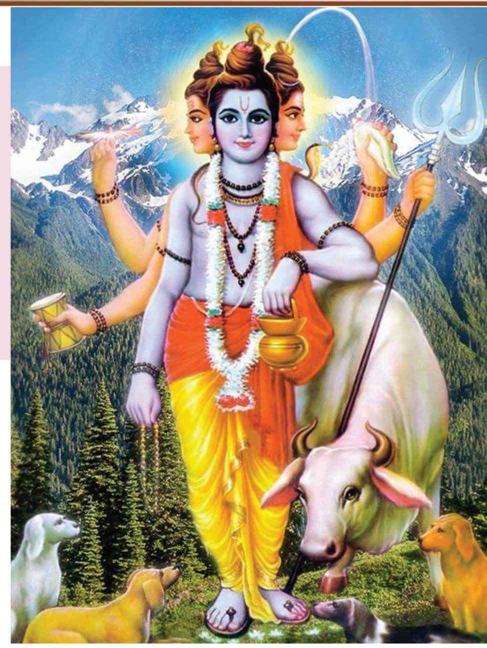

दत्तात्रेय, दत्त, दत्त गुरु जैसे विभिन्न नामों से प्रसिद्ध दत्तात्रेय ब्रह्म, विष्णु और महेश के संकलित अवतार माने जाते हैं। वे वरपुत्र के रूप में सप्त ऋषियों में एक माने जाने वाले ऋषि अत्रि और उनकी पतिव्रता-पत्नी अनुसूया को पैदा हुए थे। हनुमान और मार्कण्डेय की तरह वे भी चिरंजीवी का वर प्राप्त कर नित्य संजीवी बन गये। ऋषि अत्रि के पुत्र होने के कारण इनका नाम आत्रेय हुआ और त्रिदेवों से दत्त होने के कारण इनका नाम 'दत्तात्रेय' पड़ा।

गुरु व्यास ने पवित्र मन से सच्चे साधु के रूप में जीवन बिताये इनको श्रेष्ठ अवतार कहकर प्रशंसा की है। त्रिदेवों के संकलित रूप माने जाने वाले दत्तात्रेय में दो पैर, तीन सिर, छे हाथों को देख सकते हैं। इनके दो हाथों में भगवान विष्णु के शंख और चक्र को, और दो हाथों में भगवान शिव के त्रिशूल और कमंडल को और बाकी दो में भगवान ब्रह्म के कमल और जपमाला को देख सकते हैं। भगवान विष्णु के गरुड, भगवान महेश के बैल और भगवान ब्रह्म के हंस आदि इनके वाहन माने जाते हैं।

ऋषि अत्रि के पुत्र के रूप में जनमें त्रिदेवों के अवतार पर एक कहानी भी है। ऋषि अत्रि और उनकी पतिव्रता-पत्नी अनुसूया जंगल के अपने आश्रम में रहते थे। पत्नी अनुसूया बड़ी लगन से अपने पतिदेव की सेवा सुश्रूषा करने के साथ-साथ उनकी तपस्या में भी उचित सहायता करती थी।

संतान-प्राप्ति के लिए अनुसूया ने त्रिमूर्तियों से यही प्रार्थना करती थी कि वे तीनों उसके पुत्र के रूप में पैदा होवें। उसकी अटल भक्ति और उपासना पर मुग्ध होकर त्रिदेवों ने अपनी पत्नियों से इसके बारे में सलाह माँगी। तीन देवियों ने यही सलाह दी कि वे पतिव्रता अनुसूया की अटल भक्ति की परीक्षा करें। यदि वह उसमें खरा उत्तरे तो उसके पुत्र के रूप में जनम लें। उन देवियों का विश्वास था कि अनुसूया त्रिमूर्तियों की परीक्षा में खरा नहीं उतरेगी।

सलाह के अनुसार वे त्रिदेव संन्यासी के रूप में अपना वेश बदलकर अनुसूया के आश्रम के द्वार पर आ पहुँचे। तीनों ने अनुसूया से भिक्षा माँगी। अनुसूया अपने आश्रम में आये संन्यासियों की भूख मिटाने के लिए अन्न के साथ आयी। तब त्रिदेवों ने उसको देखकर कहा, तुम्हें निर्वस्त्र होकर हमारी भूख मिटानी चाहिए, तभी हम अन्न लेंगे। अनुसूया को अपने पातिव्रत्य पर अडिग विश्वास था। इसलिए वह अन्दर गयी और अपने पतिदेव के पाद सेवन के अभिमंत्रित जल ले आकर उन तीनों पर छिडकाया। इससे वे तीनों छोटे बच्चों के रूप में बदल गये।

तब अनुसूया निर्वस्त्र होकर सामने आयी और उन तीनों को उठाकर अपना स्तनपान कराकर उनकी भूख मिटायी। उस

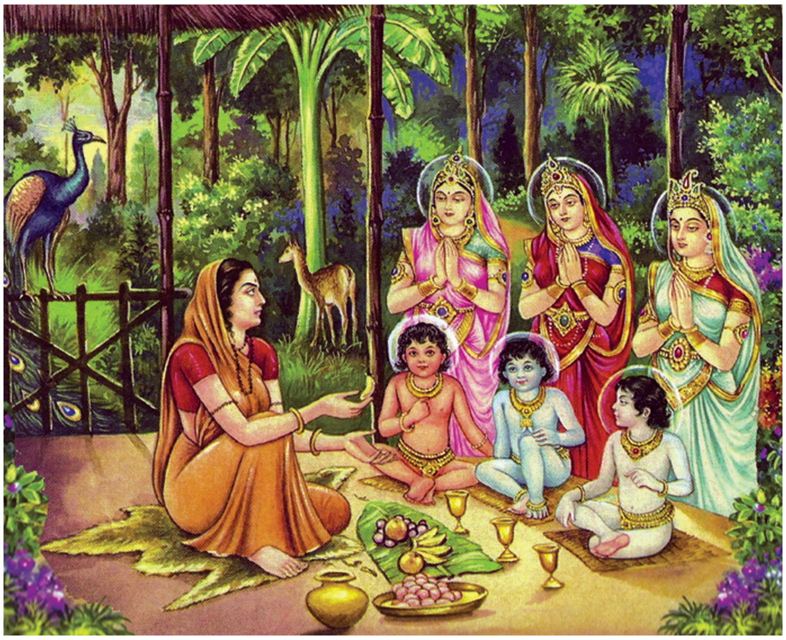

समय ऋषि अत्रि तो अपने आश्रम में नहीं थे, फिर भी वे अपनी दिव्य दृष्टि से पूरे घटनाक्रम को देख चुके थे। जब ऋषि अत्रि आश्रम वापस आये उन्होंने बडे स्नेह से एक साथ तीनों बच्चों का आलिंगन किया। इससे वे तीनों बच्चे एक ही बच्चे के रूप में बदल गये, जिसके दो पैर, तीन सिर और छे हाथ बन गये थे। ऋषि अत्रि ने उस बच्चे को आत्रेय का नाम दिया।

यह देखकर तीनों देवियों को अपने पतिदेवों की स्थिति पर बडा दुःख हुआ। वे तीनों ऋषि अत्रि और पतिव्रता अनुसूया से मिलने आश्रम आ पहुँचीं। देवियों ने उनसे अपने पतिदेवों को फिर वास्तविक रूप में देने की प्रार्थना की। तब ऋषि ने देवियाँ से कहा जैसे आपको अपने पतिदेव वापस मिलना चाहिए वैसे ही मुझे भी अपना बच्चा चाहिए। यह सुनकर तुरंत त्रिदेवों ने अपने वास्तविक रूप में आकर ऋषि अत्रि और अनुसूया को देखकर आशीर्वचन दिया कि यह बच्चा यहीं रहेगा और यह बडा होकर महान ऋषि बनेगा। इस प्रकार भगवान से दत्त होने कारण उस बच्चे का नाम दत्तात्रेय बना।

विभिन्न ज्ञान के बल पर दत्तात्रेय महायोगीश्वर के रूप में विकसित हुए। उनका विश्वास था कि संसार के सभी जीव हमें ज्ञान प्रदान करते हैं और अज्ञानता दूर करके आनंद देते हैं। एकबार राजा यदु ने उनके ज्ञान गुरु का नाम पूछा, तब उन्होंने कहा मेरे चौबीस गुरु हैं और उनसे शिक्षा ग्रहण की है। याने,

१) अपने को खोदने या दुःख पहुँचाने वाले को भी सहायता करने का ज्ञान भूमि ने दिया।

२) आलस छोडने और एक पक्ष का समर्थन न करने का ज्ञान हवा ने दिया।

३) सारे ब्रह्माण्ड को अपने में रखने पर भी किंचित भी घमंड न करने का ज्ञान आकाश ने दिया।

४) सब कुछ साफ करने और सरलता से रहने का ज्ञान पानी ने दिया।

५) सदा प्रकाश देने का और गंदगी को स्थान न देने का ज्ञान अग्नि ने दिया।

६) सारी कलाएँ क्षीण होने पर भी निराश न होने और विश्वास के साथ आगे बढने का ज्ञान चाँद ने दिया।

७) नियमित रूप से सबको अपने प्रभाव से सहायता करने का ज्ञान सूरज ने दिया।

८) हमारे दुःख का कारण लालच और अविचार हैं इस प्रकार का ज्ञान कबूतर ने दिया।

९) अपने स्थान पर मिलती चीजों से जीवन बिताने का ज्ञान अजगर ने दिया।

१०) अपनी सीमा से बाहर न आने और खारा होने पर भी घटा को मीठा जल देने का ज्ञान समुद्र ने दिया।

११) अपने लक्ष्य को पाने के लिए प्राण तक देने का ज्ञान झींकुर ने दिया।

१२) अपने संचित शहद दूसरे को देने का परमार्थ ज्ञान मधुमक्खी ने दिया।

१३) कम भावना को नियंत्रित रखने का ज्ञान अंकुश से नियंत्रित होने वाले हाथी ने दिया।

१४) आसक्ति से होते दुःख का ज्ञान राग के वश शिकार होते मृग ने दिया।

१५) अपने जीभ को संयम ने रखने से होने वाले दुःख का ज्ञान कीडे के लिए प्राण देती मछली ने दिया।

१६) पतिव्रता धर्म के पालन न करने पर भगवान को प्राप्त न करने का ज्ञान वेश्या ने दिया।

१७) धूर्तता और स्वार्थ भावना से अंत में दुःख पाने का ज्ञान कौए ने दिया।

१८) लालच, क्रोध, चिंता जैसे बुरे गुण रहित जीवन सुखदायक है का ज्ञान अबोध बच्चे ने दिया।

१९) मन में संघर्ष करती कामनायें खनकती चूडियाँ जैसी हैं; उनको उतारने का ज्ञान धान कूटती स्त्री ने दिया।

२०) अपने ध्यान को केंद्रित करने का ज्ञान तीर बनाने वाले ने दिया।

२१) अपनी दुनिया को अपने अनुसार बना लेने का ज्ञान मकडी ने दिया।

२२) अपने विचार में स्थिर रहने का ज्ञान कीडा से बनते तितली ने दिया।

२३) घमंड और क्रोध से दूसरे को बुरा करना उत्तम नहीं है का ज्ञान साँप ने दिया।

२४) अत्यधिक इच्छा दुःखदायक है का ज्ञान फूलों से शहद लेने आये भ्रमर ने दिया।

दत्तात्रेय का विचार है कि इन चौबीस गुरुओं के द्वारा ही उनकी अज्ञानता दूर हुई और सच्चाई ज्ञात हुई। उनका यह विचार इसी को बताता है कि घमंड रहित मन हर चीज में ज्ञान प्राप्त करता है। उन्होंने अपने ज्ञान के द्वारा परशुराम को विद्या मंत्र सिखाया, शिवपुत्र कार्तिकेय को अनेक प्रकार की कलायें सिखायीं और भक्त प्रह्लाद को अनासक्ति योग का ज्ञान दिया।

ईश्वर और गुरु के सम्मिलित रूप में होने वाले दत्तात्रेय अंजीर वृक्ष के नीचे निवास करते हैं। उनके पास एक गाय और उनके सामने चार कुत्तों को देख सकते हैं। माना जाता है कि दत्तात्रेय के जन्म का उद्देश्य इस भूमि को भलाई करने और चार वेदों की रक्षा करने के लिए है। इस दिशा में उनके पास होने वाली सहनशील गाय भूमि को सूचित करती है और चार कुत्ते हमारी संस्कृति को रक्षित करने वाले चार वेदों को सूचित करते हैं।

हर साल दत्तात्रेय की जयंती मार्गशीर्ष महीने में पूर्णिमा के दिन मनाये जाते हैं। **तमिलनाडु में सुसीन्द्रम नामक स्थान में होने वाले ताणुमालयन मंदिर जो अति प्रचीन है, वह दत्तात्रेय का जन्म स्थान माना जाता है।** कर्नाटक में दत्तात्रेय जयंती तीन दिन तक बडे पैमाने पर मनाये जाते हैं।

स्वस्थ शरीर, दृढ मन और सत्य ज्ञान को प्रदान करने वाले महा योगीश्वर दत्तात्रेय की उपासना करके हम भी सुखों को प्राप्त करेंगे।

तिरुप्पावै - एक परिचय

- श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण
मोबाइल - ९४४९२५४०६१

भारत एक पुण्य एवं पवित्र देश है। यहाँ पवित्र वारि के प्रवाह लेकर नदियाँ प्रवाहित होती हैं। उसी प्रकार सृष्टिकर्ता, स्थितिकार और लयकार महानुभावों की महिमाओं के प्रवाह को भक्ति-गंगा के स्रोत बना कर कई एक महान भक्त ने भक्ति की रस-गंगा प्रवाहित की थी! उत्तर में, दक्षिण में असंख्य भक्त-कवि उद्भवित होकर, अपने सिरजनहार की महिमा-वैभव का गायन कर गये थे, जिसके परिमल के मंद-पवन, सैकडों सालों के बाद, आज भी लोगों के हृदयांतराल छूते-सिहराते समूचे हिन्दुस्तान में मंडराते रहे हैं!!

उत्तर भारत में रामाश्रयी, कृष्णाश्रयी कवि उद्भवित होकर, कष्टकाल में साधारण जनता में महा धैर्य का प्रोक्षण किया था; भगवान की भक्ति की ज्योत जगा कर, सर्वत्र राम और कृष्ण के नाम का जप करवाया, जिस जपने आतंकित जन-जीवन को एक सव्य दिशा-निदेश किया था। तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि भक्त-कवियों ने जनता के मानस पर एक सुदृढ़ ढ़ाढ़स बन्धाया था, जो आज भी भारत को मजबूती के कगारों पर आसीन किया हुआ है!!

दक्षिण भारत में आल्वार और नायनार पैदा हो आये। उन्होंने समूचे दक्षिणा-पथ को अपनी भक्ति-गंगा की लहरों में बाँध कर, एक-सूत्रता प्रदान किया था।

अष्ट-छापी और आल्वार

उत्तर भारत में वल्लभ-संप्रदाय चला था। वल्लभ-संप्रदाय ने भगवान कृष्ण को अपना उपास्य बना कर, कृष्ण-तत्व की उपासना की थी। इस पंथ का प्रवर्तक वल्लभाचार्य था। आगे चल कर, वल्लभ-संप्रदाय में ''अष्ट-छाप'' के कवि आविर्भूत हो आये, जिनके नाम-परिमलदास, कुंभनदास, छीतस्वामी आदि। इस प्रकार, दक्षिण में द्रविड़देश में ''आल्वार'' जनम लेकर आये, जो बारह थे। इनके नाम- पोयूघै, पूदत्त, पेय, पेरिय, नम्म, तिरुमंगै, तिरुमुडिशै, तोंडरडिप्पोडि, मधुरकवि, आण्डाल, कुलशेखर और तिरुप्पाणाल्वार हैं।

दोनों-अष्टछापी और आल्वारों ने भगवान श्रीकृष्ण को ही अपना उपास्य बनाया था। दोनों ने भी कृष्ण- कन्हैया के रूप-वैभव, महिमा, लीला-विभूतियों का निर्मम गायन किया था और अद्वितीय भाव-गरिमा-युत पद-रचना की थी।

पेरियाल्वार और कोदै

ऐसा ही आठवीं सदी में, आल्वार-परंपरा में ''विष्णुचित्त'' नाम का एक महोदय हो आया।

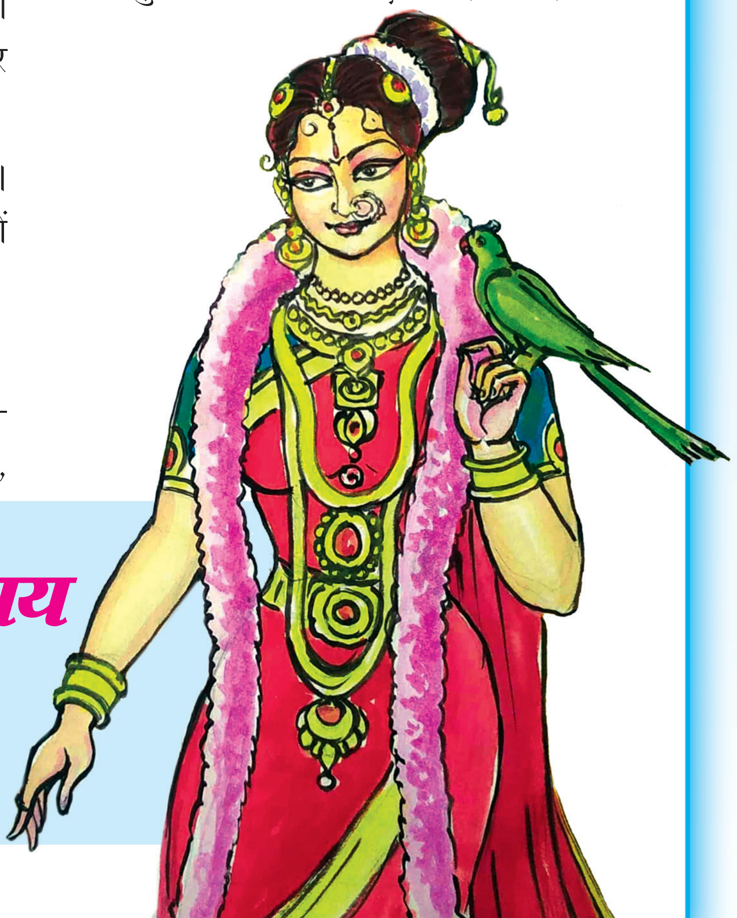

विष्णुचित्त द्रविड़देश के ''श्रीविल्लिपुत्तूर'' गाँव का वासी था। श्रीविल्लिपुत्तूर द्रविड़देश के पांड्यदेश में था, जिसका ''वल्लभराय'' नामक राजा शासन करता था। आज श्रीविल्लिपुत्तूर तमिलनाडू के रामनाथपुरम् जिले में एक तहशील है।

श्रीविल्लिपुत्तूर में भगवान ''वटपत्रशायी'' स्वामी का एक भव्य मंदिर था और आज भी है। इस मंदिर का ग्यारह मंजिलों का महान् गोपुर था और है, जो आधुनिक या स्वतंत्र भारत के तमिलनाडु-राज्य का राज-चिह्न बन कर विराजमान है!!

विष्णुचित्त इसी ग्यारह-मंजिले वटपत्रशायी-मंदिर का माल्याकार था। वह वटपत्रशायी स्वामी के धारण के लिए रोज एक महामाला बना कर अर्पित करता था।

एक दिन मंदिर के पुष्पोद्यान में भट्टनाथ अथवा विष्णुचित्त तुलसी-पौधे को लगाने के लिए जमीन खोदता था। उस छोटे-से कुंड में अद्भुत रीति में एक कन्या-शिशु उत्पन्न हो आयी!! विष्णुचित्त संतान-हीन था। इस शिशु के मिल जाने से उसके आनंद का कोई ठिकाना न था। वह उसे सानंद घर ले गया और उसे ''कोदै'' नाम देकर, लाड़-प्यार से पोसने लगा! विष्णुचित्त माला बनाने वाला था और ''कौदै'' नामक द्रविड़ शब्द का ''माला'' अर्थ है!! यही कोदै संस्कृत में गोदा होता है।

गोदादेवी का पूर्व वृत्तांत

वैकुंठ में विष्णुभगवान अपनी देवेरियों-श्रीदेवी, भूदेवियों के साथ इच्छा-गोष्ठी संवाद कर रहा था। तब भूदेवी श्रीस्वामी से बोली, ''हे नाथ! कलियुग काफी बीतने चला है। लोगों का जीवन-संघर्ष चरमोत्कृष्ट सीमा पर है। हर मनुष्य जीवन जीने पर जूझ रहा है। उसे काफी कष्ट उठाना पड़ रहा है। इस जीवन की यातना में पड़ कर मनुष्य तेरी महिमा का गायन भूल रहा है। उसमें भक्ति का लोप हो रहा है। अतएव, तेरी महिमा की व्याप्ति, सर्वेपरि शक्ति तथा तेरी ओर भक्ति की नितांत प्रेरणा और जनोद्धारण-हेतु मैं इस अवसर पर भूलोक में अवतरित होऊँगी! प्रभू, इस कार्य-हेतु मुझ-सेविका को आज्ञा मिले!!''

प्रभु विष्णुभगवान ने भूदेवी को आज्ञा दे दी।

और, भूदेवी पांड्यदेश के श्रीविल्लिपुत्तूर के वटपत्रशायी भगवान के माला बनाने वाले भट्टनाथ अथवा विष्णुचित्त को तुलसी-वन में अयाचित प्राप्त हो गयी और विष्णुचित्त साक्षात् भूदेवी ''गोदादेवी'' को लाड-प्यार से पोसने लगा था।

अगस्त्यमहामुनि की तपस्या

कैलासपर्वत पर भोलेनाथ शंकरभगवान का परिणय पर्वत-पुत्री पार्वती महादेवी के साथ संपन्न हो रहा था।

समस्त देवी-देवता-गण बड़े पैमाने पर उपस्थित थे। यों समझिये कि कैलासपरबत कचाकच-लबालब भरा हुआ था। उन महापुरुषों के भारी जमाव के कारण कैलास महापरबत डँवाडोल होने लग गया था। लोग डरने लग गये थे कि महापरबत लुढ़क कर उल्टा पलट जायेगा।

एसे भयाकुल विपत्कर परिस्थितियों में अपने को न संभालते हुए देव-शिल्पि

''विश्वकर्मा'' ने जोर से कहा, ''इस महत्तर देव-कार्य में कुछ अवांछित व्यक्ति भी पधारे हुए हैं! इस द्रविड़ अगस्त्य को किसने बुलाया था कि वह बड़े जोर से अपने हजारों अनुचरों को साथ लिए यहाँ पर उपस्थित हो चुका है, जिसके अवांछित वजन से अब कैलासपर्वत इस प्रकार डँवाडोल हो रहा है...!!''

इस ताने पर अगस्त्य का क्रोध चढ़ आया। उसने विश्वकर्मा के ताने का सख्त जवाब दिया। उसका क्रोध उतने से शांत न हो पाया और अगस्त्य ने विश्वकर्मा को शाप दे दिया, ''रे पत्थरों से जूझ पड़ने वाले शिल्पि! तेरा यह अहंकार?!- तुम चाहे हू-बहू देवताओं की मूर्तियों का शिल्पना क्यों न करे, फिर भी उसकी कीमत तुझे पूरे तौर पर न मिले! यह मेरा शाप है!!''

अगस्त्य के इस शाप से बिगड़ कर विश्वकर्मा बोल उठा, ''रे अगस्त्य-द्राविड! तेरा भी क्या बड़प्पन? तू ठिगना बावन अंगुर गात! तेरे लोगा (द्राविड़) असत्यवादी, झगड़ेदार और अनागरिक तथा चोर होंगे! तेरी भाषा काव्यहीन और कंगाली बनकर रहेगी!!''

इतने पर सब विबुधगणों ने दोनों वैरि-पक्षों को समझा-बुझा कर शांत कर दिया और शिव-पार्वतियों का विवाह धूम-धाम से तथा वैभवपूर्ण ढंग से संपन्न होगया! और, सब महोदय अपने-अपने आवास चल पड़े।

लेकिन, द्रविड-जनपदों का महानायक अगस्त्यमहामुनि विश्वकर्मा के उस ताने को भूल न पाया। उसे बार-बार यह याद हो आने लग गया कि अपने द्राविड़ी अनुयायी चोर, झगड़ालू और अपनी द्रविड़भाषा अल्हड़-बल्हड़ और काव्यहीन!! यह कैसे हो सकता है?!?...

महादेव के परमभक्त द्रविड़नायक अगस्त्य देवाधिदेव महाविष्णु को प्रसन्न करने के लिए महेंद्र पर्वत पर तपस्या करने बैठ गया। घनघोर तपस्या के उपरांत महाविष्णु ने दीदार दिया और वरदान दिया, ''हे द्रविड़नायक अगस्त्य! तेरी द्रविड़भाषा का उद्धार होयेगा। विष्णवांश के लोग द्रविड़देश में उद्भवित होकर आयेंगे। वैष्णव-भक्ति का प्रचार करेंगे। साहित्य का सृजन होयेगा, जो समूचे दक्षिणापथ में उत्कृष्ट माना जायेगा!! द्रविड़भाषा साहित्य-संपन्न हो चलेगी!!''

विष्णुभगवान के इस महत्तर वरदान से अगस्त्य महामुनि काफी संतुष्ट बन गया।

विष्णु भगवान के इस महत्तर वरदान से, द्रविड़देश में समय-समय पर कुछ महापुरुष उत्पन्न हो आये और विष्णु-भक्ति को प्लावित करते हुए रचनाएँ कीं। ये बारह महापुरुष गिने जाते हैं, जो ''आल्वार'' नाम से विख्यात हुए, जिनमें ''गोदादेवी'' का अग्रिम स्थान है। भूदेवी अंश की गोदादेवी आल्वारों में एकैक महिला आल्वार है, जिसने कृष्णोपासना का सर्वोत्कृष्ट दर्शन अपनी रचनाओं के द्वारा हमें कराया था!!

शूड़िक्कुडुत्त नाच्चियार

श्रीविल्लिपुत्तूर के वटपत्रशायी महराज के मंदिर के माल्यकार (माला बनाने वाले) भट्टनाथ अथवा विष्णुचित्त को तुलसी-वन

में मिली भूदेवी अंश की कोदै अथवा गोदादेवी लाड़-प्यार के साथ विष्णुचित्त के घर पलने लगी।

भोर भये उठके विष्णुचित्त अपनी निज-धर्मपत्नी को साथ लिए, मंदिर के अपने पुष्पोद्यान में जाकर फूल, तुलसी के पत्रादि चुन कर टोकरियों में भर कर, माला बनाने घर लाता था। फिर बैठ कर बड़ी एकाग्रता के साथ बहुत-ही खुबसूरत माला वह बनाता था।

विष्णुचित्त माला बनाने के बाद स्नान करने जाता था, क्योंकि एक ब्राह्मण-कर्मचारी बिन नहाये मंदिर थोड़ी जाया करता है!! इस काल-अवधी में गोदा-बालिका, अपने आराध्य-वटपत्रशायी भगवान के कैंकर्य-हेतु अपने पिता के द्वारा गुँथी हुई अति सुंदर पुष्पमाला टोकरी में से अपने नन्हें हाथों से उठा कर अपनी खूबसूरत कंठमाला में पहनती थी! वह शरारती बाला, मात्र माला पहनती ही नहीं, बल्कि उस कमरे में आयोजित व उपस्थित बड़े आइने में अपना प्रति-बिंब देख कर आनंदित हो जाती थी!!

फिर, भट्टनाथ स्नानादियों से निबट कर माला लेकर श्रीस्वामी के मंदिर में चला जाता था। यह क्रम ऐसा कई साल चलता रहा। पिता माला बनाता था, पुत्री उसे चोरी-चुप्पी पहन कर, यथारीति टोकरी में रख देती थी!!

एक दिन मंदिर के पुजारी स्वामी को माला धारने वाला ही था कि माला से लिपटे सुडौल बाल उसे नज़राया। पुजारी ने झट पहचाना कि यह माला किसी औरत के साथ पहले धारी हुई है!!? उसने फटाफट माला पहनाने तिरस्कार कर दिया और विष्णुचित्त की नीयत की कटु-से-कटु निंदा की!

लाचार विष्णुचित्त माला घर ले आया।

उसे काफी दुःख हुआ।

सुबह भट्टनाथ ने दरवाजे की ओट से यह देख कर अमित विस्मित बन गया कि अपनी लाड़की प्रिय पुत्री गोदा, श्रीस्वामी की सेवा के लिए गुँथित फूलमाला आप पहन कर आईने में

देखती हुई आनंदित हो रही है!! अनजाने में, अज्ञानवश बालिका भंयकर अपराध कर रही है!! इसका क्या किया जाय और इस भोले अपराध का प्रायश्चित व दंड क्या हो सकता है?!

उस रात को विष्णुचित्त व्याकुलमना होकर ठीक से सोया न था।

उसने एक सपना देखा, जिसमें वटपत्रशायीस्वामी दर्शन देते हुए कहा, ''कोदै साक्षात् भूदेवी है, जो मेरी प्रिय देवेरी है! वह मेरी माला न पहनेगी, तो और क्या करेगी?। उससे पहनी हुई माला को ही मुझ पर धारा जाय! यह परंपरा रोज जारी रहे!!''

यही सपना मंदिर के प्रधान पुजारी को भी आया था, जो सुबह होते ही अपने अनुचर-गणों को साथ लेकर, बाजा-भजंत्रियों के संग विष्णुचित्त के घर पहुँच गया। माला गोदादेवी को पहनायी गयी, फिर ठाठ-बाट के साथ ले जाकर मंदिर में श्रीस्वामी को पहनायी गयी!!

माला पहले गोदादेवी पहनती थी, जिसे अनंतर श्रीस्वामी को पहनायी जाती थी!

अतः गोदा ''शूडिक्कुडुत्त नाच्चियार'' अर्थात् ''माला धरकर समर्पित करने वाली महिला'' नामके बिरुद-नाम से विख्यात हुई!!

तिरुप्पावै - एक परिशीलन

तिरुप्पावै गोदादेवी के द्वारा विरचित एक अद्वितीय वेदान्तपरक रचना है। इसकी रचना-काल ईसा की ८वीं सदी है। कहा जाता है कि तिरुप्पावै ग्रन्थ-रचना कोदै अम्मा ने अपने पाँचवें वर्ष की आयु में संपन्न की थी!!

तिरुप्पावै में एक व्रत-विधान कहा गया है।

व्रत के क्रम या विधान को बताते-बताते गोदादेवी भक्ति में प्रवेश कराती है।

व्रत का नाम ''कात्यायनी महाव्रत'' है, जिसका आचरण सर्व प्रथम पुराण काल में श्रीमन्महालक्ष्मी ने अपने पति की प्राप्ति में किया था। दूसरे पर्याय द्वापरयुग में राधा के नेतृत्व में गोप-कन्याओं ने अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की प्राप्ति में आचरित किया था।

अब कलियुग में कारण-जन्मी गोदादेवी का आराध्य श्रीरंगम के श्रीरंगनाथ, जिससे वह शादी करनी चाहती थी। श्रीरंगनाथ से विवाह से पहले गोदादेवी ने पुराणेतिहास काल के कात्यायनी व्रत को ''तिरुप्पावै'' नाम से आचरित किया था।

तिरुप्पावै को बढिया व्रत, सुमंगली व्रत, श्रीव्रत, मंगल व्रत आदि नामों से पुकारा जाता है।

तिरुप्पावै उन जिज्ञासुओं के लिए है, जो अभी-अभी भक्ति-चेतना में उतरे हुए हैं। ऐसे भक्ति के प्राथमिक पहलुओं में विचरते भक्तों के लिए तो तिरुप्पवै एक दिक्सूची है, जो उन्हें दिशा-निर्देश कर भगवान की प्राप्ति में काम करता है!

तिरुप्पावै में प्रकृति का दृष्टांत के तौर पर परिचय दिया गया है। अर्थात् प्रकृति में संभवित होने वाले परिवर्तन, समय-समय की घटनाओं तथा संपन्न होने वाले कार्यों के माध्यम से मानव-जीवन की गति-विधियों का संकेत देते हुए भक्त को जागरूक बनाया गया है।

तिरुप्पावै में अन्य प्रकरण ''जागरण'' है। जीवन का वैभव-दान परात्पर की देन है, जिसके प्रति जीव को कृतज्ञ बन कर रहने की आवश्यकता है। धन-संपन्नता के परदे को चीर कर भगवान की प्राप्ति में रमने का आह्वान मिलता है।

तीसरा विभाग है- भगवान की लीला व चेष्टाओं का परिचय, जिनके माध्यम से भक्त को जगह-जगह पर ''प्रणव'' का स्पष्ट दर्शन कराया गया है!

तिरुप्पावै कुल ३० विशेष छंदों का एक महाग्रन्थ है, जिसके २१-३० पाशुरों में (छंदों में) भक्त के लिए अत्यंतावश्यक ''शरणागति'' का विस्पष्ट बोध निक्षिप्त है, जो वैष्णव-धर्म की धुरी समझी जाती है!! ''शित्तुम शिरुकाले...मत्तै नम कामंगल मात्तु!'' वाले ग्रन्थ के २९वें पाशुर में साक्षात् वैष्णव-धर्म का सार ही निक्षिप्त कहा जाता है!!

समापन

तिरुप्पावै द्रविड़-वेद है, जिसमें चारों वेदों का सार निक्षिप्त है। इसमें श्रीमन्महाविष्णु के दशावतारों का स्मरण किया गया है। राम, वामन, नरसिंह आदि देवताओं का स्मरण गोदादेवी ने किया था, मगर तिरुप्पावै के अधिनायक प्रभु श्रीकृष्ण अवश्य है, क्यों कि गोदा अपने आपको द्वापर की राधा और अपने आवास श्रीविल्लिपुत्तुर को साक्षात् व्रजभूमि मानती थी!!

गोदादेवी की सजावट में
तिरुचानूर
श्रीपद्मावती अम्मवार

११.११.२०२० से १९.११.२०२० तक संपन्न तिरुचानूर श्री पद्मावती अम्मवार के कार्त्तीक ब्रह्मोत्सव की दृश्य-माला

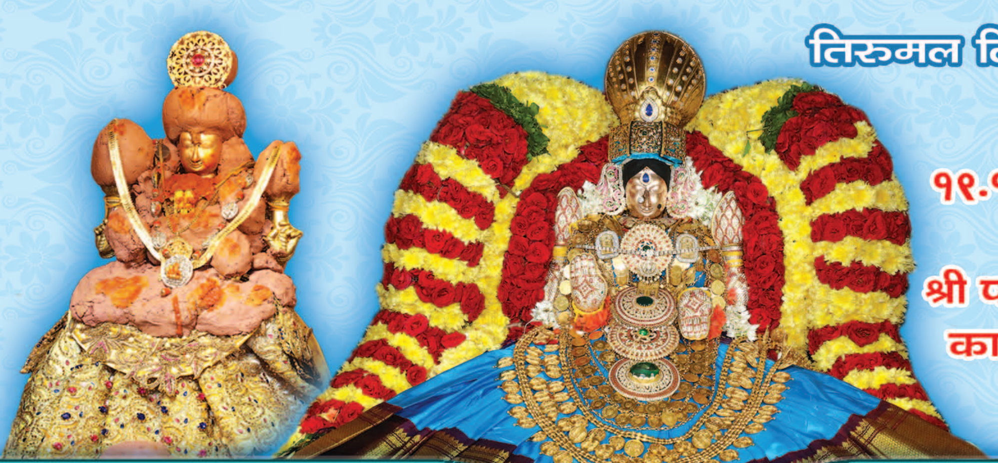

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

११.११.२०२० से १९.११.२०२० तक संपन्न तिरुचानूर श्री पद्मावती अम्मवार के कार्त्तीक ब्रह्मोत्सव की दृश्य-माला

हाल-ही-में तिरुमल श्रीवार, तिरुचानूर श्री पद्मावती अम्मवार पर संपन्न पुष्प-याग-महोत्सवों के दृश्य

तिरुचानूर श्री पद्मावती अम्मवार के वार्षिक ब्रह्मोत्सवों में आन्ध्रप्रदेश राज-सरकार की तरफ से रेशमी कपड़े समर्पित गौ।। श्रीमान् उपमुख्यमंत्री महोदय श्रीनारायणस्वामीजी

तिरुमल श्रीवारि के आलय में कार्तिक दीपोत्सव

भागवत कथा सागर

भगवान् नृसिंहदेव का भयावह रूप

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

मोबाइल - ९८२१९१४६४२

दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने भयानक रूप में अपमानजनक शब्दों द्वारा भक्त प्रह्लाद को धमकी दी। उसने प्रह्लाद को मारने के लिए तलवार निकालकर अपने घूंसे से खंभे पर तेज प्रहार करते हुए कहा ''देखता हूँ अब तुम्हें तुम्हारा भगवान कैसे बचाता है?'' तब तुरन्त ही खंभे से गर्जन की एक अत्यंत भीषण ध्वनि निकली, जो सभी को भयभीत करती हुई सृष्टि के सर्वोच्च लोक तक पहुँच गई। दैत्यराज हिरण्यकशिपु एवं उसके सैनिकों ने भी वह भयानक ध्वनि सुनी, किन्तु वे उस ध्वनि के स्त्रोत को समझने में असमर्थ थे। वे चारों ओर देखने लगे तभी उस खंभे के टुकड़े-टुकड़े हो गये और उसमें से एक अत्यंत भयावह रूप प्रकट हुआ। वह मनुष्य के शरीर एवं शेर के सिर वाला एक अद्भुत् रूप था। हिरण्यकशिपु भौंचक्का होकर सोचने लगा ''मानव शरीर एवं शेर के सिर वाला यह प्राणी कौन है?''

वास्तव में उस रूप में खंभे से प्रकट होने वाले स्वयम् भगवान नृसिंहदेव थे और वे अपने शुद्ध भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए अवतरित हुए थे। दैत्यराज ने भगवान के उस रूप को ऊपर से नीचे तक अत्यंत आश्चर्यचकित होकर देखा। भगवान का चेहरा गर्दन के चमकते हुए बालों से ढ़का था; उनकी आँखें अत्यंत क्रोधित थीं; उनके दाँत प्राणघातक थे: उनकी जिह्वा तेज धार वाली दुधारी तलवार की भाँति चल रही थी; उनके नथुने एवं भारी मुँह पर्वत की कंदराओं की भाँति थी; उनके कान तने हुए एवं स्थिर थे; उनके जबड़े

भयानक रूप से फैले हुए थे; उनका पूरा शरीर आकाश को छू रहा था; उनकी कमर पतली थी; उनके शरीर के बाल चन्द्र-किरणें-जैसे लग रहे थे; उनकी भुजाएँ सैन्य कतारों की तरह थीं तथा वे शंख, चक्र, गदा एवं कमल पुष्प से सुसज्जित थीं और उनकी कांति की चमक मानो दैत्यराज के पूरे दरबार को निगले जा रही थी। हिरण्यकशिपु शीघ्र ही समझ गया कि भगवान विष्णु ने उसे मारने के लिए यह नया रूप धारण किया है, लेकिन उसने इस पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया। एक बड़ा गदा लेकर वह नृसिंहदेव पर आक्रमण करने के लिए बढ़ा। परम भगवान नृसिंहदेव ने तुरन्त ही उसकी गदा के साथ उसे भी पकड़ लिया फिर कुछ ही क्षणों बाद उसे छोड़ दिया। दैत्यराज को लगा कि उसके शत्रु ने भयभीत होकर उसे छोड़ दिया और देवलोक में देवताओं को यह घटना अशुभ प्रतीत हुई। तुरंत ही उस राक्षस ने तलवार से भगवान पर प्रहार

किया, किन्तु भगवान नृसिंहदेव ने गर्जन करते हुए तेजी से उसे पकड़ लिया। भगवान की गर्जना इतना भयावह था कि दैत्यराज ने भय से आँखें बन्द कर लीं। भगवान नृसिंह देव हिरण्यकशियपु को खींच कर सभा-भवन की देहली पर ले गये। तब भगवान ने उस असुर को गोद में लेकर अपने तेज नाखूनों से छिन्न-भिन्न कर डाला।

भगवान का चेहरा और गर्दन के बाल खून से सने थे। भगवान ने उस असुर के शरीर से आँतों को निकालकर हार की भाँति पहन लिया। उन्होंने असुर के शरीर से हृदय निकाल कर दूर फेंक दिया। फिर उसके मृत शरीर को धक्का मार कर भगवान अन्य राक्षसों की ओर मुड़े, जो हिरण्यकशियपु के सहायक थे। भगवान ने पल भर में ही उन सभी असुरों का वध कर दिया और फिर गर्जते हुए जाकर सिंहासन पर बैठ गये। भगवान के क्रोध का वह रूप इतना भयानक था कि कोई भी उनके पास जाने का साहस न कर सका। यद्यपि सभी देवता उस असुर की मृत्यु से बहुत प्रसन्न हो गये। उन्होंने तुरन्त आकाश से पुष्पों की वर्षा की और अनेक शुभ वाद्य-यंत्र बजाये। देवलोक की स्त्रियाँ परमानंदित होकर नाचने लगीं।

तब बह्माजी, शिवजी, इन्द्र, ऋषि गण तथा अनेकों पितृदेवताओं, सिद्ध लोक वासियों, विद्याधरों, मनु, गन्धर्वों, चारणों, यक्ष, किम्पुरुष, बेताल तथा किन्नरों ने वहाँ आकर भगवान नृसिंहदेव की स्तुति की, लेकिन वे उनके क्रोध को शांत ने कर सके। वे सभी लक्ष्मी जी के पास पहुँचे और उनसे भगवान् के क्रोध को शांत करने की प्रार्थना की लेकिन भगवान के भयावह रूप को देखकर लक्ष्मी जी भी उनके पास जाने का साहस न कर सकीं। भगवान भक्त प्रह्लाद की रक्षा के लिए प्रकट हुए थे, इसलिए बह्मा जी ने तब प्रह्लाद को ही भगवान का क्रोध शांत करने के लिए उत्साहित किया। यद्यापि सभी देवता एवं अन्य महान् व्यक्ति भगवान् नृसिंह देव के पास जाने से डर रहे थे लेकिन वह छोटा बालक भक्त प्रह्लाद भगवान के पास जाने से बिलकुल न डरा। वह धीरे-धीरे भगवान की ओर बढ़ा और उनके चरण स्पर्श करके दण्डवत प्रणाम किया। प्रह्लाद-द्वारा चरण स्पर्श करते ही भगवान् नृसिंह देव का क्रोध पूर्णतया समाप्त हो गया। उन्होंने बालक को उठाकर अपने कमल रूपी हाँथों को उसके सिर पर रखा। भगवान नृसिंहदेव-द्वारा प्रह्लाद महाराज का सिर स्पर्श करने से प्रह्लाद के समस्त भौतिक कल्मष धुल गये और उनका हृदय प्रेम से तथा आँखें प्रसन्नता के आँसुओं से भर गईं। उन्होंने हाथ जोड़कर प्रेमपूर्वक भगवान की स्तुति की।

''हे भगवान! जब बह्माजी जैसे महान देवता एवं अन्य लोग आप की उचित प्रार्थना न कर सके, तो मैं उपयुक्त प्रार्थना कैसे कर सकता हूँ? मैं तो एक दैत्य परिवार में जन्मा हूँ। मैं आप की प्रार्थना करने के लिए योग्य नहीं हूँ। धन, ऊँचा परिवार, सौन्दर्य, तपस्या, शिक्षा आदि-द्वारा आप को प्रसन्न करना संभव नहीं है। आप को केवल भक्ति-द्वारा ही प्रसन्न किया जा सकता है। गजेन्द्र के ऐसा करने से ही आप उनसे प्रसन्न हो गये। आपने अपने कर-कमलों को मेरे सिर पर रखा जबकि ऐसा आशीर्वाद लक्ष्मी जी, ब्रह्मा जी एवं अन्य देवताओं को भी प्राप्त न हो सका। जब मैं साँपों के कुँए में गिर रहा था तब आप के सेवक ने दया करके मुझे बचाया और शिक्षा दी कि किस प्रकार सर्वोच्च दिव्य स्थान को प्राप्त किया जा सकता है। उनकी सेवा करना मेरा प्रथम कर्तव्य है। मैं उनकी सेवा कैसे छोड़ सकता हूँ? हे भगवान! आप की प्रार्थना करना, समस्त कर्मफलों को आप को समर्पित करना, आप की पूजा करना, आप के निमित्त कर्म करना, आप के चरणकमलों का सदैव स्मरण करना तथा आप के यश का श्रवण करना - इन छः भक्ति के अंगों के बिना कैसे कोई व्यक्ति परमहंसों को मिलने वाले लाभ को प्राप्त कर सकता है?'' भगवान नृसिंहदेव इन प्रार्थनाओं से पूर्णतया संतुष्ट हो गये और उन्होंने भक्त प्रह्लाद को आशीर्वाद दिया।

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(षष्टम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि. तापडिया
मोबाइल - ९४४९५१७८७९

१०२

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्री श्रीदेशिक स्वामीजी का भी दयाशतक में यही कहना है कि:-

''अनुभवितु मघौघं नाल मागामि कालः
प्रशमयितुमशेषं निष्क्रियाभिर्न-शक्यं।

स्वयमितिहिदयेत्वं स्वीकृत श्री निवासा
शिथिलित भव भीतिः श्रेयसे जाय सेनः।''

इस श्लोक का यही सारांश है कि इस जीव के पास इतना असंख्य पाप है कि अनन्त काल पर्यन्त साधनों के जरिये छूट नहीं सकता। श्री भगवान की निर्हेतुक कृपा ही एक ऐसा सरल उपाय है कि जिसके सहारे से कोई भी आसानी से भवबन्धन से छूट कर परमपद में जा सकता है।

श्री श्रीलोकाचार्य स्वामीजी का श्री मुख बचन हैं:-

'कर्म फलवत् कृपा फलमपि अनुभाव्यमेव'

इसका यह भाव भया कि जिस प्रकार कर्मों के फल के कारण यह चेतन संसार में पड़ा हुआ है, श्री भगवान की निर्हेतुक कृपा का सहारा यदि लेवे तो उसके बल से इसी जन्म के अन्त में अवश्य भवसागर से पार होकर परमपद प्राप्त होगा।

श्री परमाचार्य जी की भी तो श्री भगवान से यही प्रार्थना है कि ''हे करुणासागर! साधन स्वरूप कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि से मैं रहित हूँ। अकिञ्चन हूँ याने उपायान्तर शून्य हूँ। अनन्य गति हूँ याने रक्षकान्तर शून्य हूँ। हमें तो एक आपकी कृपा ही का सहारा है।'' इससे भी यही सारांश आया कि इस चेतन का उद्धार भगवत्कृपा के बिना कभी हो नहीं सकता।

आदिशेषावतार श्रीरामानुज स्वामीजी महाराज शरणागति गद्य में श्री भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हे भगवन्! हे श्रीमन्नारायण! हे काकुत्स्थ!

''अनाद्यविद्या सञ्चितानन्ताशक्यविस्त्रंसन कर्मपाश प्रग्रथितोऽनागता नन्तकाल समीक्षयाप्यदृष्ट सन्तारो पायो निखिल जन्तु जात शरण्य श्रीमन्नारायण त्वत्पादार बिन्द युगलं शरणंमहं प्रपद्ये।''

हे भगवान! वासुदेव! यह जीव अनादि की अविद्या के सञ्चय किये हुए असंख्य कर्मों के मजबूत बन्धनों से इस तरह जकड़ के बंधा हुआ है कि उन को जरा हिला भी नहीं सकता है। जब कि हिला नहीं सकता तो उनसे छूटेगा कैसे। इसका खुलासा भाव यह भया कि अपने साधनों के बल से अनादि काल से आज तक इस जीव का संसार बन्धन छुट नहीं पाया, न आगे अनन्त काल तक छूटने का भरोसा है। आपकी निर्हेतुक कृपा ही एक ऐसा अचूक अति प्रबल उपाय है कि जिसका सहारा लेकर चाहे जो इस अनादि बन्धन से छूट कर परमपद के असीम सुख का भागी बन सकता है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि शीघ्र से शीघ्र भवसागर से पार होने के लिये श्री भगवान की निर्हेतुक कृपा के सिवा इस चेतन के स्वरूपानुरूप दूसरा उपाय नहीं है। पहले से इस प्रसंग में यही चला है कि वेदान्तादि सच्छास्त्रों में संसार बन्धन से छूटकर मुक्ति मिलने के लिये

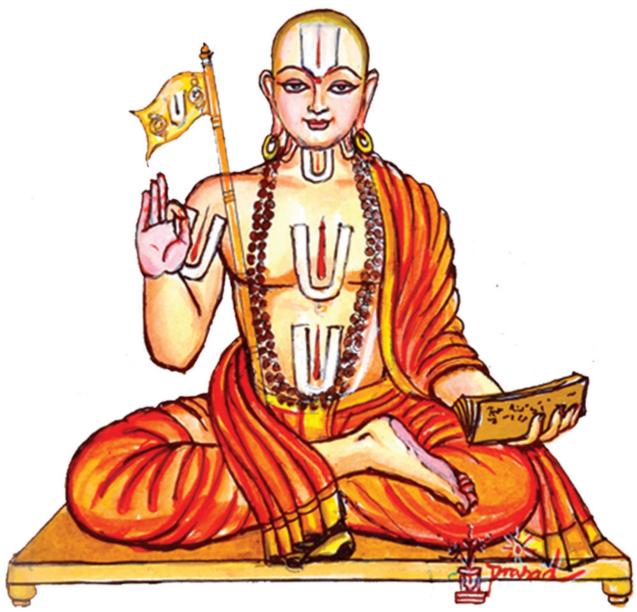

दो प्रकार के साधनों का निर्णय किया है। एक भक्ति और दूसारा प्रपत्ति याने एक तो श्री भगवान की उपासना और दूसरा श्री भगवान की शरणागति। साधन स्वरूप भक्तियोग को उपासना कहते हैं और श्री भगवान की निर्हेतुक कृपा के बल से परमपद मिलने की आशा रखना इसको शरणागति कहते हैं विचार यह चला है कि इन दोनों उपायों में कठिन कौन है और सब के लायक सरल कौन है। विचार करते-करते शास्त्र तथा स्वरूप ज्ञान में पहुँचे हुए बड़े-बड़े महात्माओं के अनुभवों से यही सिद्ध हुआ कि साधन स्वरूप भक्तियोग से मुक्ति लेना महा कठिन है। भक्तियोग के बल से करोड़ों में एक कोई भले ही संसार से पार हो जाय परन्तु श्री भगवान की शरणागति ऐसी सरल तथा अचूक उपाय है कि इसके बल से चाहे जो इसी जन्म के अन्त में डंका घोष संसार बन्धन से छूट सकता है।

इस प्रसंग में इन दोनों उपायों पर विचार किया जा रहा है कि इनका स्वरूप क्या है। इन में सुलभ कौन है इसी विचार में शास्त्र और महात्माओं के वचनों के द्वारा यह निर्णय किया गया है कि साधन स्वरूप भक्तियोग अत्यन्त कठिन है, उसमें अनेक शत है उसको सब कोई कर नहीं सकता है। साधन स्वरूप भक्तियोग करने वाले का मोक्ष कब होगा इस बात का तो कुछ पता ही नहीं है। हाँ यह अवश्य लिखा है कि (सप्तैता मोक्षदायिकाः) सातपुरियों में जो निवास करेगा, सात पुरियों में जिसका शरीर छूटेगा उसे मोक्ष मिलेगा। इसको सुनकर बहुत से अधिकारी प्रसन्न होते हैं और सातपुरियों में शरीर छोड़ने की कोशिश भी करते हैं। बहुत से अधिकारी प्रतिज्ञा करते रहते हैं कि मैं ताजिन्दगी धाम से बाहर नहीं जाऊँगा। परन्तु उन्हें यह समझ नहीं आता है कि यह प्रसंग साधन भक्तियोग से सम्बन्ध रखने वाला है। इस में भी वही शर्त लागू है जो कि कर्मयोग के प्रारम्भ में है। तीर्थवास से, तीर्थवास के बल से मोक्ष चाहना यह भी कर्मयोग के अन्तर्गत है, न कि शरणागति योग के। इसमें भी वही बला है कि जिसका मन आदि इन्द्रियाँ वश नहीं हैं, उनको पूर्ण रूप से तीर्थवास का फल मिल नहीं सकता। जैसे कि श्री अयोध्या माहात्म्य में लिखा हैः-

श्लोक

''यस्य हृस्तौच पादौच जिह्वा चापि सुसंयता।
विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च सतीर्थ फल मश्नुते।।
प्रतिग्रह निवृतश्च सन्तुष्टो येन केनचित्।
अहंकार निवृतश्च सतीर्थ फल मश्नुते।।
अकामुको निरालम्बः स्वल्पाहारो जितेन्द्रियः।
विमुक्तः सर्व दोषैश्च सतीर्थ फल मश्नुते।।
अक्रोधनश्च योनित्यं सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु सतीर्थ फल मश्नुते।।''

इन श्लोकों का वही भाव है जो पहले कह चुके हैं फिर भी कुछ कहते हैं।

''जिसके हाथ कुकर्मों में प्रवृत नहीं होते, जिसके पग अधर्म की तरफ कभी नहीं जाते, जिसकी जीभ अभक्ष्य भक्षण नहीं करती, कभी दूसरों की बुराई नहीं करती ऐसे अधिकारी को तीर्थवास का फल प्राप्त होता है।''

क्रमशः

गतांक से

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी
मोबाइल - ९४०३७२७९२७

पार्त्ता नरुसमयंगळ् पदैप्प, इप्पार् मुळुदुम्
पोर्त्तान् पुहळ्कोण्डु पुन्मैयिनेनिडै त्तान्पुहुन्दु,
तीर्त्ता निरुविनै तीर्त्तु अरंगन् शेय्य ताळिणैयोडु
आर्त्तान्, इवै येम्मिरामानुजन् शेय्यु मर्भुतमे ।।५२।।

भगवान् रामानुजः स्वकीयचक्षुर्विक्षेपमात्रेण षड्दर्शनानि शिथिलीचकार; कृत्स्नामपि पृथिवीं स्वयशसा समावृणोत्; क्षोदीयसो ममापि हृदयं प्रविश्य प्रबलपातकानि व्यनीनशत्; श्रीरंगिणश्चरणद्वंद्वेन सह मम मूर्धानमयूयुजच्च। सर्वमिदमस्मद्गुरोरस्यात्यद्भुतचेष्टितम्।

हमारे गुरु श्रीरामानुज स्वामीजी के ये सभी अद्भुत चेष्टित हैं कि उन्होंने अपनी दृष्टि डालने मात्र से (दुष्ट) षड्दर्शनों को शिथिल बना दिया; अपने यश से समग्र भूमंडल ढांक दिया; अपनी निर्हेतुक कृपा से मुझ नीच के हृदय में प्रवेश कर मेरे प्रबल पाप मिटा दिये; और मिटाने के बाद मेरे सिर को श्रीरंगनाथ भगवान के सुंदर पादारविंदों के साथ मिला दिया।

क्रमशः

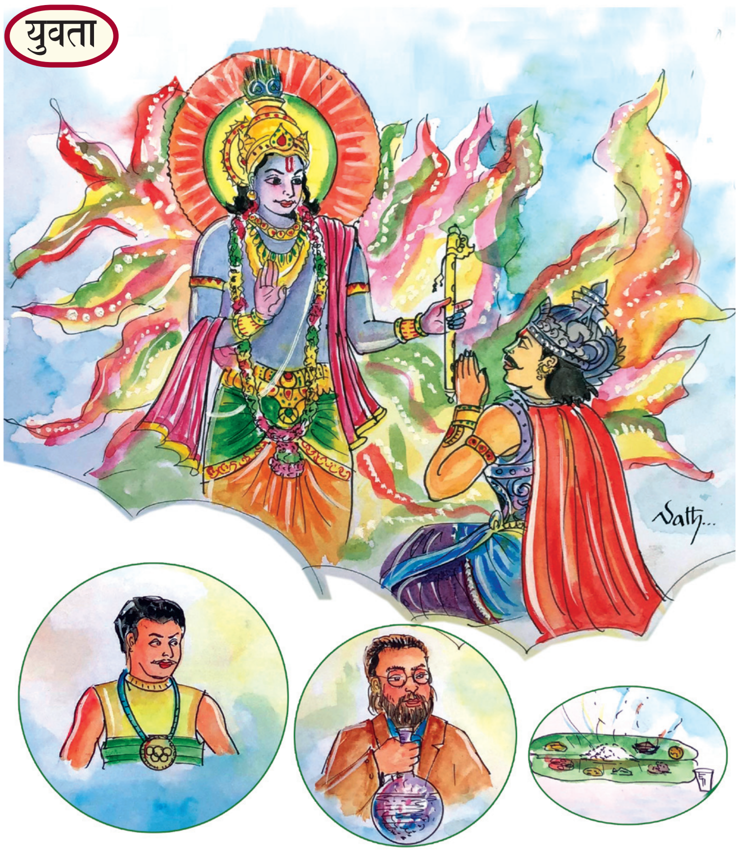

भगवद्गीता और नौजवान

ऊँचा स्वाद - ऊँचा लक्ष्य

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवाँघ्रि सेवक दास

हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौराँग दास

मोबाइल - ९८२१९१४६४२

स्वाद का अनुभव केवल जिह्वा से नहीं अपितु बुद्धि से भी होता है। एक बार विजय का रसास्वादन करने वाला व्यक्ति सदैव विजयी होने की कामना करता है। कोई भी विजय का स्वाद जिह्वा से नहीं अपितु बुद्धि से लेता है। यह भी सच है कि जब तक किसी कार्य का स्वाद पैदा नहीं होता तब तक वह कार्य आरम्भ भी नहीं होता है। भोजन के विषय में भी सभी का ऐसा ही अनुभव है। भोजन की थाली में स्वादिष्ट व्यंजनों के न होने पर खाने में रुचि नहीं होती है। इसलिए सभी को कार्य करने एवं उसके सफलता पूर्वक पूर्ण होने का स्वाद उत्पन्न करना चाहिए। नौजवानों को यह भली प्रकार समझना चाहिए।

यदि बात स्वाद की की जाये तो स्वाद उच्च एवं निम्न स्तर दोनों प्रकार के होते हैं। उदाहरण के लिए किसी विवाह के प्रीतिभोज में जाने वाला व्यक्ति यदि एक सड़क के किनारे की दुकान पर कुछ खाने के लिए रुक जाये, तो उसे निश्चित रूप से निम्न स्वाद वाला माना जायेगा। विवाह के शानदार प्रीतिभोज से कुछ मिनट पूर्व ही सड़क के किनारे की दुकान पर खाना निश्चित रूप से बुद्धिमत्ता का प्रतीक नहीं है। अतः उच्च स्तर के स्वाद एवं निम्न स्तर के स्वाद में अन्तर जानना आवश्यक है। इसी प्रकार जीवन के ऊँचे एवं नीचे लक्ष्यों में भी अन्तर होता है। यदि जीवन को बदलने वाली महत्वपूर्ण प्रवेश परीक्षा के दिन एक विद्यार्थी पड़ोसी के घर सामान्य पार्टी मनाने चला जाये, तो इसे निश्चित रूप से उच्च लक्ष्य को छोड़ कर निम्न लक्ष्य के पीछे भागना कहा जायेगा। पड़ोसी के घर पर उत्सव में जाना भी आवश्यक है, लेकिन महत्वपूर्ण प्रवेश परीक्षा के दिन नहीं। प्रवेश परीक्षा के दिन केवल परीक्षा देना ही सर्वोच्च लक्ष्य होना चाहिए। लेकिन विभिन्न स्तर के लक्ष्यों एवं अन्य सामान्य कार्यों को करने के बीच मानो सदैव एक प्रतियोगिता-सी लगी रहती है। जो लोग उच्च स्वाद या उच्च लक्ष्यों पर ध्यान केन्द्रित करते हैं, वे जीवन में असाधारण विजय प्राप्त करते हैं। केवल एसे लोग ही परिवार, समाज एवं देश का नाम ऊँचा करते हैं। इस विषय में भगवद्गीता (२.५९) से निम्नलिखित उचित मार्गदर्शन प्राप्त होता है :

“देहधारी जीव इन्द्रियभोग से भले ही निवृत्त हो जाये पर उसमें इन्द्रियभोगों की इच्छा बनी रहती है। लेकिन उत्तम स्वाद का अनुभव होने पर वह एसे कार्यों को बन्द करके चेतना के स्तर पर स्थिर हो जाता है।”

यद्यपि भव्य विवाह समारोह के भोज में जाने वाले एक व्यक्ति को सड़क पर मिलने वाले खाने का बोध होता है और उसकी जिह्वा उसे उस खाने की ओर खींचती भी है, लेकिन उसे विवाह के प्रीतिभोज के उत्तम स्वाद को याद रखते हुए पूर्ण बुद्धिमत्ता के साथ सड़क पर खाने से बचना चाहिए। सभी बुद्धिमान व्यक्ति अवश्य एसा ही करेंगे। भगवद्गीता में इसे “परं दृष्ट्वा निवर्तते” कहा गया है। अर्थात् “उच्च स्वाद के अनुभव द्वारा निम्न स्वाद के कार्यों से बचना।” जीवन को बदल देने वाली महत्वपूर्ण प्रवेश परीक्षा देने वाला एक बुद्धिमान् विद्यार्थी घर के त्योहारों पर ध्यान दिये बिना अपने उच्च लक्ष्य पर केन्द्रित रहता है।

जीवन में उच्च लक्ष्य एवं उच्च स्वाद के अनुभवी व्यक्ति निम्न स्तर के स्वादों को छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं।

ओलम्पिक में स्वर्ण पदक प्राप्त करने के लक्ष्य वाला व्यक्ति निश्चित रूप से सभी सुखों को त्याग कर प्रतिदिन कम से कम १० घंटों तक अभ्यास अवश्य करेगा। नोबेल प्राईज पाने के इच्छुक वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में या विचारपूर्ण गहन अध्ययन में वर्षों व्यतीत करते हैं। तभी अद्भुत् सफलता के परिणाम प्राप्त होते हैं। शराब, नशीली दवाओं एवं धूम्रपान का सेवन तथा व्यर्थ की बातों में समय नष्ट करने वाले युवा निश्चित रूप से उच्च स्वादों एवं उच्च लक्ष्यों के विकसित होने से वंचित होते हैं। अनुभवी एवं शुभचिंतकों की सहायता से उच्च लक्ष्यों को निर्धारित करने वाले व्यक्ति अनेक समस्याओं से बचकर महान कार्यों में सफलता प्राप्त करते हैं। पाँच वर्ष के बालक ध्रुव महाराज ने सभी बचपन के कार्यों को छोड़कर कठोर तपस्या की और परिणामस्वरूप वे ध्रुव तारा बन गये। सफलता के इच्छुक व्यक्ति को ध्रुव महाराज को अपना आदर्श मानना चाहिए। मन द्वारा नीचे स्वादों की ओर आकर्षित किये जाने पर भी युवाओं को उच्च लक्ष्यों पर केन्द्रित रहने का अभ्यास करना चाहिए। एसे अभ्यास में निरंतर लगने के लिए अनुभवी संत व्यक्तियों के साथ एवं भगवद्गीता के पूर्ण निर्देशन की आवश्यकता होती है।

‘मानव सेवा ही... माधव सेवा’

आर्ष धर्म में बताया गया है।
सह प्राणियों को किसी भी तरह रक्षा की जाय, तो अनंत पुण्यफल हमें और हमारे परिवार को मिलेगा। कलियुग वैकुण्ठ के भगवान का आवास स्थान तिरुमल में रक्तदान करना परम पवित्र कार्य है।
आपके रक्त से अन्य व्यक्ति का प्राण बचता है।

तिरुमल में रक्तदान कीजिए।

तिरुमल अश्विनी अस्पताल में प्रतिदिन सुबह 8 बजे से लेकर दोपहर 12 बजे के अंदर कोई भी रक्तदान कर सकता है।

दूरभाष - 0877-2263601

आइये... रक्तदान कीजिए!
संकटग्रस्त व्यक्ति को सहायता कीजिए!!

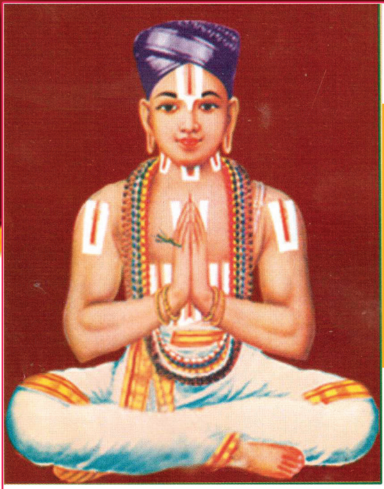

अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार्

श्रीमती ममताभट्टड्
मोबाइल - ९०३५११२६३१

जन्म नक्षत्र : मार्गशीर्ष मास, धनिष्ठा नक्षत्र

अवतार स्थल : श्रीरंगम

आचार्य : वडक्कू तिरुविधि पिल्लै

परमपद प्राप्त स्थान : श्रीरंगम

रचनाएँ : तिरुप्पावै ६००० पद व्याख्यान, कण्णिनुण् शिरुताम्बु व्याख्यान, अमलनाधिपिरान व्याख्यान, दिव्यप्रबन्ध रहस्य (आळवार के शब्दों के आधार पर रहस्य त्रय का व्याख्यान), आचार्य हृदयं, पट्टोलै (आचार्य हृदयं के लिए उनके स्वयं का व्याख्यान जो अब प्राप्त नहीं है)आदि।

अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार का जन्म श्रीरंगम में वडक्कू तिरुविधि पिल्लै के यहाँ श्रीरंगनाथ भगवान की कृपा से हुआ। वे और उनके अग्रज श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी श्रीरंगम में ऐसे बडे हुए जैसे अयोध्या में श्रीराम और श्रीलक्ष्मण और गोकुल में श्री कृष्ण और श्रीबलराम। उन दोनों को एक ही समय में संप्रदाय के महान आचार्यों जैसे, श्री कलिवैरिदास स्वामीजी, पेरियवाच्चान पिल्लै, वडक्कू तिरुविधि पिल्लै आदि के कृपा-कटाक्ष और मार्गदर्शन प्राप्त हुए। उन्होंने संप्रदाय अपने पिता वडक्कू तिरुविधि पिल्लै आदि की कृपा कटाक्ष और मार्गदर्शन प्राप्त हुए। उन्होंने संप्रदाय अपने पिता वडक्कू तिरुविधि पिल्लै के चरण कमलों में सीखा। इन दोनों आचार्यों का एक विशेष गुण यह है कि उन्होंने नैष्टिक ब्रह्मचर्य का व्रत लिया था और जीवन पर्यंत उसका पालन किया।

श्री वरवरमुनि स्वामीजी ने अपने उपदेश रत्नमाला के ४७वें पाशुर में नायनार् और उनके योगदान की महिमा का वर्णन किया है।

नम्बियर चेय्त व्याक्कियैगल् नालिरण्डुक्कू
एनचामै यावैक्कुम इल्लैये
तम् सीराल वैयगुरु विन तम्बी मन्नू मणवाळमुनि
चेय्युमवै तामुम चिल

सामान्य शब्दार्थ :

दिव्यप्रबन्ध के कुछ प्रबंधों के लिए श्री वेदांती स्वामीजी ने व्याख्यान किया था (श्री पेरियवाच्चान पिल्लै से भी पहले) श्री पेरियवाच्चान पिल्लै के बाद दिव्यप्रबन्ध के कुछ प्रबंधों के लिए व्याख्यान अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार् ने भी लिखा था, जो सभी दिव्य गुणों से पूर्ण थे और श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी के प्रिय अनुज थे।

व्याख्यान में पिल्लै लोकम् जीयर ने नायनार् की महिमा का वर्णन किया है।

१) ''थम् चीर'' पाशुर के लिए व्याख्यान में वे नायनार् का एक विशेष गुण दर्शाते हैं। वे बताते हैं कि दिव्यप्रबन्ध में नायनार् की योग्यता अन्य आचार्यों से कहीं अधिक है। इसे ''आचार्य हृदय'' का अध्ययन करके समझा जा सकता हैं, जो पूरी तरह से दिव्यप्रबन्ध के शब्दों का उपयोग करके बनाया गया है (साथ ही इतिहास और पुराणों से भी कुछ शब्दों को लिया गया है)।

२) ''वैय गुरुविन तम्बी'' में यह दर्शाया गया है कि नायनार् की महानता श्री पिल्लै लोकाचार्य स्वामीजी के

अनुज के रूप में जन्म लेने से है। वे ''जगत् गुरुवरानुज'' (जगत् गुरु श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामीजी के अनुज) के रूप में लोकप्रिय है।

जब की नायनार् तिरुप्पावै, कण्णिनुण् शिरुताम्बु, अमलनाधिपिरान आदि के लिए व्याख्यान किये हैं, जो सभी आनंददायक है, पर उनकी श्रेष्ठ कृति आचार्य हृदयं है।

उनके व्याख्यान/रचनाएँ :

१) उनके तिरुप्पावै ६००० पद का व्याख्यान बहुत ही विस्तृत और बहुत सुंदर है। इस व्याख्यान में, हमारे संप्रदाय के सार का सुंदरता से प्रदर्शन, प्रतिपादन किया गया है। नायनार ने अपने तिरुप्पावै व्याख्यान में भगवान के उपायात्वं/उपेयत्वं, भगवान की निर्हेतुक कृपा, अम्माजी का पुरुषकार, परगत स्वीकारं, कैंकर्य विरोधी आदि सिद्धांतों को बड़ी उत्कृष्टता से समझाया है।

२) उनके द्वारा दिया गया अमलनाधिपिरान व्याख्यान हमारे संप्रदाय की श्रेष्ठ कृतियों में से एक है। उसमें वे बहुत सुंदरता से भगवान के दिव्य रूप के अनुभव और सिद्धांत के समागम की व्याख्या करते हैं।

३) उनके कण्णिनुण् शिरुताम्बु व्याख्यान में पंचमोपाय (आचार्यचरणों को ही अपना सर्वस्व स्वीकार करना) और आचार्य कैंकर्य की महिमा को बहुत ही सुंदरता से दर्शाया गया है।

४) उनके दिव्यप्रबन्ध रहस्य, रहस्य त्रय - तिरुमंत्र, द्वयमंत्र और चरमश्लोक के अर्थ को दिव्यप्रबन्ध के शब्दों द्वारा बहुत सुंदरता से समझाया हैं। यह उन श्रेष्ठ रचनओं में से एक है जिसे दिव्यप्रबन्ध के विशेषज्ञ पसंद करते हैं।

५) अंततः, आचार्य हृदयं, उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति, श्री शठकोप स्वामीजी और उनके श्रीसहस्रगीति दिव्यप्रबंध की सटीक भावनाओं को प्रदर्शित करती है। यह ग्रंथ, श्रीवचनभूषण दिव्यशास्त्र (श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामीजी द्वारा कृत) में दर्शाए गए सिद्धांतों को और विस्तार में समझाता है।

किसी की महानता को समझने के लिए, किसी अन्य महानुभाव के द्वारा उनके विषय में कहे हुए शब्दों को देखना चाहिए। नायनार् ने अत्यंत अल्प आयु में अपना शरीर त्यागने का निर्णय लिया और श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामीजी को यहाँ छोडकर परमपद की ओर प्रस्थान किया। दुःख के सागर में गिरे हुए श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामीजी नायनार् के मस्तक को अपनी गोद में रखकर रोते हुए कहते हैं :

मामुदुम्बईमन्नू मणवाल अण्णलोडू
चेममुदन वैकुण्ठं सेंद्रक्काल
मामेनरु थोट्टूरैत चोल्लुम तुयम थन्निनाल पोरुलुम
एळुतुम् इनग्गुरैप्पारार्

सामान्य शब्दार्थ :

सभी वैभवों से नायनार् के परमपद गमन के पश्चात, यहाँ कौन है जो रहस्य त्रय - तिरुमंत्र, द्वयमंत्र और चरमश्लोक (जहाँ भगवान अपने हृदय पर हाथ रखकर कहते हैं ''माम्'' मैं रक्षक हूँ) के अर्थ को समझाएगा।

नायनार् की ऐसी महिमा थी कि स्वयं श्री पिळ्ळै लोकाचार्य स्वामीजी उनकी महिमा का वर्णन करते हैं। हम भी अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार् के चरण कमलों में प्रार्थना करें कि हम भी उनके समान भगवान और अपने आचार्य के प्रति ऐसी निष्ठा प्राप्त करें।

अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार् की तनियन्

द्राविडाम्नाय हृदयं गुरुपर्वक्रमागतम्
रम्यजामातृदेवेन दर्शितं कृष्णसूनूना

अळगिय मनवाळ पेरुमाळ् नायनार् का मंगलाशासन (जो प्रायः आचार्य हृदयं के बाद गाया जाता है)

तन्तरुळवेणुम् तवत्तोर् तवप्पयानाय
वनत मुदुम्बै मणवाल - चिंतैयिनाल्
नीयुरैत्त मारन निनैविन पोरुलनैत्तेन्
वायुरैत्तु वाळुम् वगै

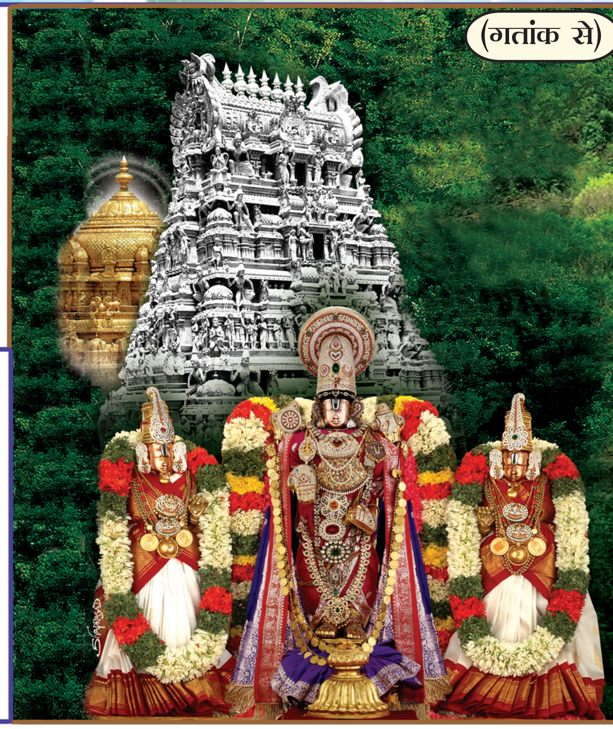

(गतांक से)

श्री वेंकटेश सुप्रभात

स्तोत्र रचना - श्री प्रतिवादि भयंकर अण्णा स्वामीजी

व्याख्या - श्री यू.वी.पी.बी.श्रीनिवासाचार्यजी

मोबाइल - ९३६४३२४८४४

पञ्चाननाब्जभवषण्मुखवासवाद्याः

त्रैविक्रमादिचरितं विबुधाः स्तुवन्ति।

भाषापतिः पठति वासरशुद्धिमारात्

शेषाद्रि शेखरविभो तव सुप्रभातम् ।।६।।

पदार्थ -

पञ्चानन, अब्जभव, षण्मुख,

वासव आद्याः - शिव, ब्रह्म, सुब्रह्मण्य, इन्द्र आदि,

विबुधाः - देवता लोग,

त्रैविक्रम आदि चरितं - तीन पदविन्यास से लोकों को नापना आदि (तुम्हारे) चरितों को,

स्तुवन्ति - (बोलकर) स्तोत्र करते हैं।

भाषापतिः - बृहस्पति, आरात् समीप में, वासरशुद्धि (तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण आदि) दिन शुद्धि को,

पठति - पाठ करते हैं, शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम्।

भावार्थ - श्रीशेषाद्रि के नाथ! ब्रह्म आदि श्रेष्ठ देवता, लोकों को नापना आदि आपके वीर चरितों को कहते रहते हैं। गुरु पंचांग पढ़ते हैं। आपको यह सुप्रभात है।

विशेषार्थ -

पञ्चाननः - पाञ्च सिरवाले शिवजी,

अब्जभवः - श्रीमन्नारायण के नाभी कमल में प्रगट हुए ब्रह्माजी,

षण्मुखः - छह कृत्तिका देवताओं के स्तन्य को एक साथ पीने के उपयुक्त छह सिरवाला सुब्रह्मण्य,

वासवः - अष्टवसुओं का मालिक इन्द्र।

त्रैविक्रमादिचरितम् - श्रीमन्नारायण भगवान के चरितों में त्रिविक्रम होकर लोकों को नापने का जो चरित्र है, वह अति उत्कृष्ट है। अतः उसकी प्रधानता देते हुए आदि चरितों को ऐसा कर रहे हैं। विबुधाः= विशेषेण बुध्यन्ते हमारे जैसे लोगों से अच्छी तरह तथा अधिक जानने वाले होने से यह देवताओं का वाचक है।

भाषापतिः - वाक्पति बृहस्पति। यह शब्द सरस्वती के पति ब्रह्म को भी बताता है, परंतु पंचांगपठन पुरोहित के कार्य होने से यहाँ देव पुरोहित गुरु को बताता है। यह जानना कि श्रीरंग जी में अद्यापि पंचांग पढने वाले 'श्रीरङ्गेश पुरोहित' भट्टारक है (श्री पराशर भट्टारक के वंशज हैं)। श्री वेंकटाद्रि में वर्तमान में प्रातः काल की तोमाल सेवा (पूजा) तथा अर्चना के बीच में जो पञ्चाङ्गपठन होता है वह उस समय में प्रातः काल के विश्व रूप के समय में होता था। यह इस श्लोक के आधार से जान सकते हैं।

वासरशुद्धि - दिन का अच्छा समय। यह, त्याज्य आदि के भी पढने से, अशुद्धि का भी उपलक्षण है (द्योतक है) ।।६।।

ईषत्प्रफुल्लसरसीरुहनारिकेल-

पूगद्रुमादि सुमनोहरपालिकानाम्।

आवाति मन्दमनिलः सह दिव्यगन्धैः

शेषाद्रिशेखरविभो तव सुप्रभातम् ।।७।।

पदार्थ -

ईषत्प्रपुल्लसरसीरुह - थोडे खिले कमल के पुष्पों के,

नारिकेल पूग द्रुमादि - नारियल सुपारी आदि वृक्षों के,

सुमनोहर पालिकानां - सुन्दर पालिकाओं के,

दिव्यगन्धैः सह - दिव्य गन्धों के साथ,

अनिलः - वायु,

मन्दं - धीरे,

आवाति - बहता है। तुम्हारा यह सुप्रभात हो।

विशेषार्थ - 'पालिका' यह शब्द जिस अर्थ में (द्रविड भाषा के) प्रयुक्त किया गया है, निघण्टुओं में उस अर्थ में उपलब्ध नहीं है सिर्फ प्रयोगबल से ही समर्थन कर सकते हैं। श्री भक्तांघ्रिरेणुसूरि की 'तिरुप्पल्लियेलुच्चि' (प्राबोधिकस्तोत्र) दिव्यप्रबंध की उक्ति के आधार पर ऐसा शब्द प्रयुक्त है।

पूरा खिल जाय, तो सुगन्ध चली जाती है (कम हो जाती है)। अतः ईषत् कहा गया है। श्री वेंकटाद्रि में रहने वाले वृक्ष, पौधे, लता ये सब अप्राकृत हैं, ऐसा पुराण

वचन है। अतः सुगन्ध न कह कर दिव्य गन्ध कहा गया है। अर्थ है अप्राकृत गंध (युक्त है) ।।७।।

उन्मील्य नेत्रयुगमुत्तमपंजरस्थाः

पात्रावशिष्टकदलीफलपायसानि।

भुक्त्वा सलीलमथ केलिशुकाः पठन्ति

शेषाद्रिशेखर विभो तव सुप्रभातम् ।।८।।

पदार्थ -

उत्तम पंजरस्थाः - श्रेष्ठ पिंजरे में रहे,

केलिशुकाः - लीलार्थ पाले हुए तोते,

नेत्रयुगम्ः - दोनों आँखों को,

उन्मील्य - खोलकर,

पात्र अवशिष्ट - (आपके भोग के बाद) (कटोरी, बगोले आदि) पात्रों में बचे,

कदलीफल पायसानि - केले और खीर को,

भुक्त्वा - खाकर,

अथ - बाद,

सलीलम् - सोल्लास,

पठन्ति - बोलते (रटते) हैं।

भावार्थ - हे शेषाद्रि के नाथ! आपके मंदिर में पाले हुए लीला के तोते रात में आपके भोग के बचे (प्रसाद) केले के फल और खीर खाकर आपके नामों को बोलतें (रटते) हैं। आपको यह सुप्रभात है।

विशेषार्थ - उत्तम पञ्जरम् - श्रेष्ठ पिंजरे, मणिजडित, सोने के सिरों से बनने से सुन्दर रहना ही श्रेष्ठता है। शुकाः पठन्ति - तोते बोलते हैं। किसे पढते हैं इस प्रश्न के उत्तर में 'आपके नाम' इस शब्दों को लेना है। गोदाम्बाजी की सूक्ति (१२-९) स्मरण करने योग्य है। ''कमलनिवासिनी लक्ष्मीजी का स्थान वक्षःस्थल वाले''

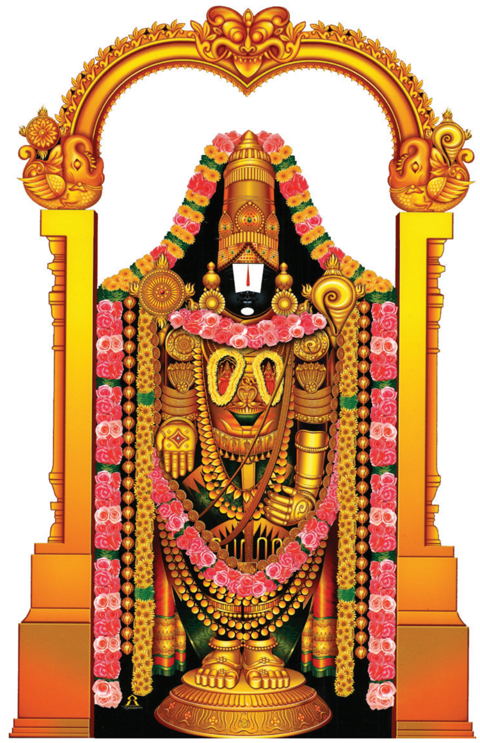

''श्री वेंकटाद्रि में सदा विराजमान श्रीमान'' आल्वारों के इन मङ्गलाशासन के बल से पिंजरे का श्रेष्ठ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। (ऐश्वर्य वाले के संबंध से चीजें भी ऐश्वर्य युक्त होती हैं।)

श्रीरंगजी में 'शुक मण्डम' में पालित तोते हमेशा रङ्गा-रङ्गा, कावेरी रङ्गा, कस्तूरी रङ्गा ऐसा बोलते हैं। वैसा ही वेंकटाद्रि में भी पालित तोते 'गोविन्दा गोविन्दा' बोलते रहते हैं।

पायसम् - दूध मिले (दूध मिश्रित) अन्न नहीं। दूध में पका अन्न। 'पयसि संस्कृतं पायसं' इस व्युत्पत्ति से पानी को उबाल कर पकाया अन्न नहीं, दूध को ही उबाल कर उसमें पकायेअन्न- यह अर्थ है। स्वयं मधुर बोलने वाले तोते पायस (खीर) को पीकर बोले, तो और मधुर बोलेंगे। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं ।।८।।

क्रमशः

(गतांक से)

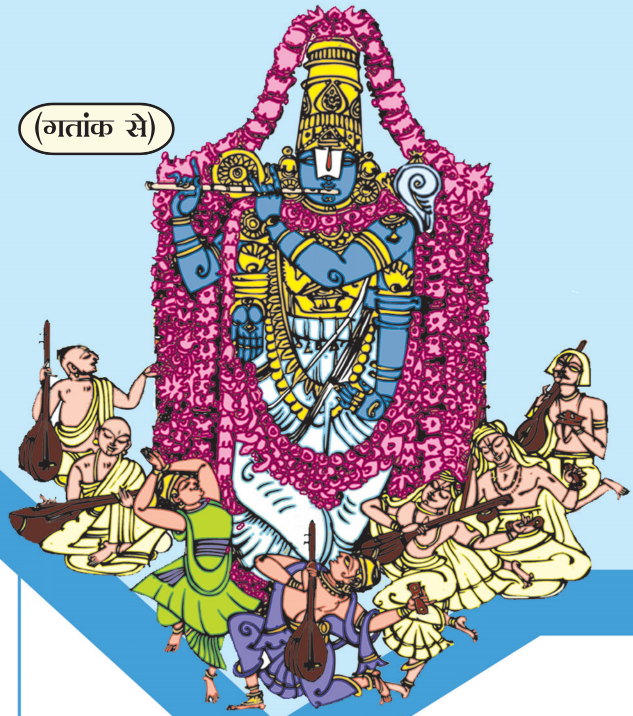

हरिदास वाङ्गमय में श्रीवेंकटाचलाधीश

तेलुगु मूल - श्री एस.नागराजाचार्युलु
हिन्दी अनुवाद - डॉ.एम.आर.राजेश्वरी
मोबाइल - ९४९०९२४६१८

ब्रह्म, रुद्र तथा इंद्राति देवताओं के लिए भी इस पर्वत की जानकारी व इसके माहात्म्य का बोध दर्लभ हो रहा है। उद्देश्य यह है कि अल्पज्ञानी जो मानव हैं, उनके लिए तो इसके बारे में जानना असाध्य ही है।

''अदे वेंकटाचलमखिलोन्नतमू (यह वेंकटाद्रि ब्रह्मांड में अति उत्तम है)

आदि ओ ब्रह्मादुलकपुरूपमू'' (ब्रह्मादि के लिए यह अद्वितीय है)

प्रभान्वित ऐसे पर्वत का भक्तिपूर्वक अधिरोहण करना, वहाँ स्थित श्रीनिवास के दर्शन से प्राप्त पुण्य के परिमाण का वर्णन करना अनिर्वचनीय व अगणित ही है।

''न तीर्थ यात्रावचदान यज्ञं। व्रतं तपोनार्चन मन्यदैवं।
यत् श्रीनिवास स्यचनाम कीर्तनं। तदेव सर्वार्थ सुवृष्टि कारणं।।

तीर्थयात्रा करने से, दान-यज्ञादि करने से, व्रताचरण से, तपस्या एवं अर्चनादि करने से जो फल मिलता है, उससे दोगुना पुण्यफल श्रीनिवास के दर्शन तथा उसका नामसंकीर्तन करने से प्राप्त होता है। पुण्य कमाने के लिए जितने उपाय ऊपर कहे गये हैं, वे सभी नाम-संकीर्तन के १/१६ वाँ भाग ही होता है।

''तवनाम स्मृतेर्भक्ता कलां र्नाहिंति षोड़षीम्।
ओम् नमो वेंकटेशाय पुरुषाय महात्मने।
महानुभावाय महामाहनेऽमेय कर्मणे।।''

यह पुराणोक्ति, नामसंकीर्तन की फलश्रुति है।

सकलदेवता स्वरूपात्मक, पुण्यदायक इस पर्वत पर, जिस अत्यल्प पुण्यकार्य को मानव भक्तिपूर्वक कर रहा है, उसी के परिणामस्वरूप, वह भगवान महाफल या उत्कृष्ट फल को प्रदान कर रहा है।

''पुण्योयं वेंकटगिरि स्सर्वपुण्य स्थलेष्वपि।
समस्त तीर्थान्यत्रैव पुण्यानि निवसंतिः।
भक्तापराधान सोढ्वैव वेंकटेशोदयापरः।
रक्षत्वेव ततस्सोयं सेव्यश्री वेंकटेश्वरः।
सुवर्णमन्नताम्बूलं सुगंध शीतलं जलम्।
अत्र दत्वानरः पुतास्सर्वान्कामानवाप्नुयात्।।''

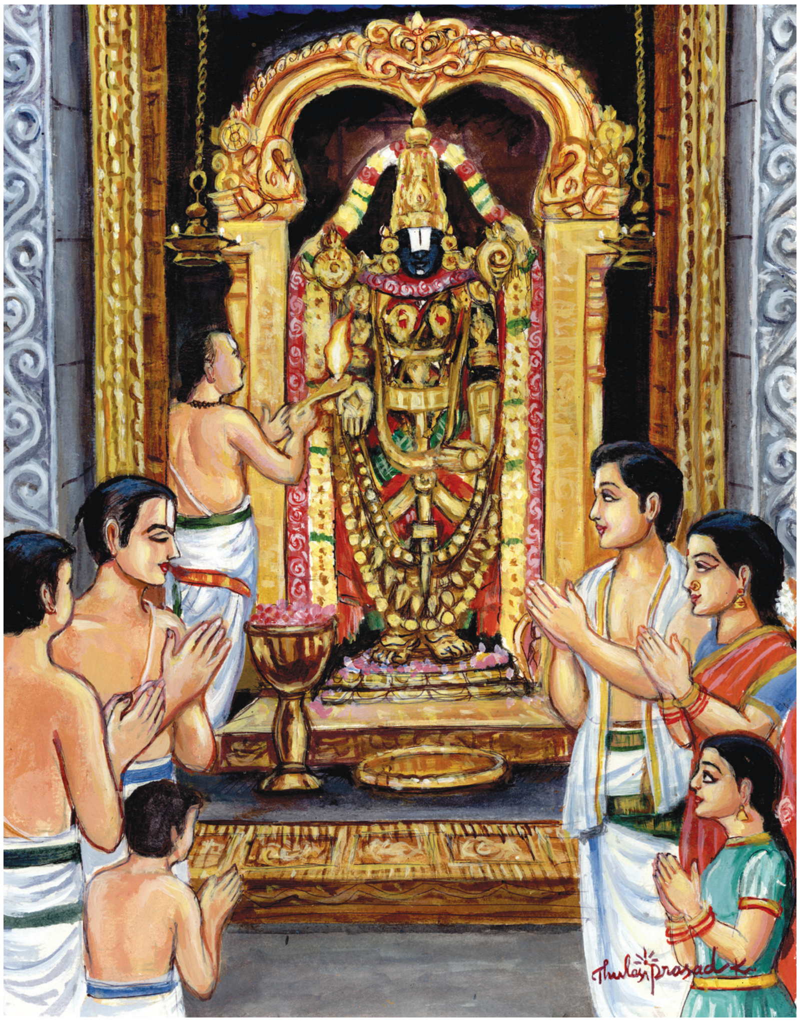

यह सप्ताचल समस्त तीर्थों का संगमस्थल है, भक्तों के अपरोधों को सहन कर, उन्हें क्षमा करने वाला सहिष्णु श्री वेंकटेश्वर स्वामी का निवास स्थान है। ऐसे पवित्र पर्वत पर सुवर्ण, अन्न (खाद्य व पेय), तांबूल, सुगंधयुक्त शीतल जल को दान देने पर, दाता सर्वाभीष्ट फलों का भोक्ता बन पायेगा। इतना ही नहीं-

''अद्‌भुतम् तास्य चरितं वर्णितुं केनशक्यते।
तथापि तारकं सर्व पापघ्नं पुण्यवर्दनम्।
वेदेषुच पुराणेषु वेंकटेशकथामृतम्।
वर्णितं चेतिहासेषु भारताद्यागमेशुच।
मनोहरंतु संश्राव्य मिहामुत्रेष्टदायकं।
ज्ञानप्रदं विशेषेण महैश्वर्यस्य कारणं।
वैराग्य भक्ति सत्वादि प्रदेन्द्रिय वशप्रदे।।''

इस पर्वत के बारे में, पर्वताधिप के बारे में, यहाँ स्थित तीर्थश्रेष्ठों के बारे में कहने के लिए वर्ण कम पड़ जाते हैं। यह पर्वत सकल पापों का हरण करनेवाला गिरि है, पुण्यों की वृद्धि करने वाला पुण्य धाम है। वेद, पुराण, इतिहास, महाभारत आदि में वर्णित यह श्रेत्र, मानव के लिए अभीष्टकारी पुण्यधाम है। यह क्षेत्र ज्ञानप्रदाता, ऐश्वर्य प्रदाता, भक्ति-विराग प्रदाता, सत्वगुणप्रदाता के रुप में भासित है। एकादश पुराणों के अंतर्गत इस वेंकटाचलक्षेत्र के माहात्म्य का जो वर्णन प्रस्तुत है, वह बहुत कम ही प्रस्तुत हुआ है। उसका प्रस्तुतीकरण वर्णन के बाहर की वस्तु ही मानना होगा। इस पहाड़ के बारे में जानकारी प्राप्त कर, पर्वत पर विराजमान श्रीनिवास भगवान की महानता को जानने के बाद, इस भगवान का दर्शन लेना सभी प्रकार से श्रेयोदायक, तथा चतुर्विधफल प्राप्ति के लिए योगदायक होता है।

''मानुषं देशमासाद्य यः प्रुमान् वेंकटाचलं''

''वैकुंठो वेंकटगिरिः वासुदेवो रमापतिः।
नकृतं देवसंघैश्च नकृतं विश्व कर्मणा।
तत्रसाक्षात् रमाकांतः किं तत्र सुकृतं फलम्।।''

यह वेंकटाद्रि ही भूवैकुंठ कहलाता है और उस पर विराजमान अपरवासुदेव ही श्रीवेंकटेश्वर स्वामी है। यह भगवान स्वयंभू मूर्ति कहलाता है। इस सालग्राम

अर्चा मूर्ति का निर्माण न ही देवतासमूह ने किया, ना ही विश्वकर्म के द्वारा बनाया गया। इस भगवान का दर्शन करना, कहना चाहिए कि वह मानव द्वारा कमाये गये जन्मांतरों का पुण्यफल ही है। उस भगवान का दर्शन समस्त श्रेष्ठफलों की प्राप्ति के रूप में ही स्वीकारना होगा।

क्रमशः

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

तिरुमल यात्री इनका आचरण न करें, तो अच्छा होगा।

- ☒ अपने साथ कीमती आभूषण या अधिक नकद न रखें।
- ☒ भगवान के दर्शन के लिए मात्र ही तिरुमल पधारें, अन्य किसी उद्देश्य से नहीं।
- ☒ दर्शन के लिए जल्दबाजी न करें, क्यू लाइन में ही सक्रम जाने का प्रयत्न करें।
- ☒ मंदिर के आचार-व्यवहारों के अनुरूप मंदिर में प्रवेश निषिद्ध है, तो कृपया मंदिर को न आवें।
- ☒ तिरुमल में सभी फूल भगवान की पूजा के लिए है इसलिए पुष्पों का धारण न करें।
- ☒ पानी और बिजली को वृथा न करें।
- ☒ अपरिचितों को काटेज में प्रवेश न दें। चाबियों को उन्हें न सौंपें।
- ☒ पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रिक थैलियों के अलावा किसी अन्य प्लास्टिक थैलियों का उपयोग न करें।
- ☒ चार माडावीथियों में चप्पल धारण न करें।
- ☒ भगवान दर्शन और आवास के लिए धोखेबाज या दलाल से संपर्क न करें।
- ☒ फेरीवालों से नकली प्रसाद मत खरीदें।
- ☒ तिरुमल मंदिर के परिसरों में थूकना आदि असह्य कार्य न करें।
- ☒ सेलफोन, कैमेरा जैसी चीजें और आयुधों को मंदिर के अंदर न ले जायें।
- ☒ विविध राजकीय कार्यकलाप, सभायें, ब्यानर, रास्तारोक, हडताल आदि सप्तगिरियों पर निषेधित है।

तिरुमल में निषेधित कार्य

- 🛇 तिरुमल में धूम्रपान, शराब, मांसाहार आदि निषेधित हैं।
- 🛇 अन्य मतों का प्रचार न करें।
- 🛇 पशु, पक्षी का वध निषेधित है।
- 🛇 तिरुमल में जुआ, पासा आदि को खेलना या अन्य खेलों में धन को बाजी लगाना निषेधित है।
- 🛇 भिखमंगों का प्रोत्साहन न करें।
- 🛇 तिरुमल में प्रईवेट व्यक्तियों द्वारा केशखंडन या कल्याणकट्टाओं (क्षुरकशाला) को चलाना निषेधित है।
- 🛇 आवास को अनधिकारिक तौर पर देना या लेना मना किया गया है।

(गतांक से)

श्री प्रपन्नामृतम्

(१६वाँ अध्याय)

मूल लेखक - श्री स्वामी रामनारायणाचार्यजी

प्रेषक - श्री रघुनाथदास रान्दड

मोबाइल - ९९००९२६७७३

यतिराज का श्रीरंगम प्रयाण

रात्रि की ऊष्मा को दूर करने वाले चाँद की भाँति श्रीरामानुजाचार्य कांचीपुरीस्थ भक्तों के हार्दिक दोषों को दूर कर उनके बीच वैकुण्ठवासी भगवान की तरह सुशोभित हुए। एक दिन कालहस्तिपुरवासी अपने मौसेरे भाई गोविन्दाचार्यजी के उज्जीवनार्थ अपने माता तथा श्रीरामानुजाचार्य के शिष्य श्री शैलपूर्णाचार्य स्वामीजी के यहाँ पत्र लिखकर भेजा जिसे देखकर श्री शैलपूर्णाचार्य स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान रंगनाथ की सन्निधि में जाकर प्रार्थना की कि- ''भगवान! हम लोगों को रक्षार्थ श्रीमान् यतिश्रेष्ठं रामानुजाचार्य को अपनी सन्निधि में बुला लें।'' भक्त परवश भगवान रंगनाथ ने उनकी इस प्रार्थना से प्रभावित हो एक पत्र लिखकर श्रीवरदराज भगवान की सेवा में किसी वाहक द्वारा भिजवा दिया, जिसे पढ़कर पहले भगवान वरदराज अत्यन्त प्रसन्न हुए। पत्र में लिखा था-

एतावन्तं चिरं कालं देवराज यतीश्वरः।
भगवंस्त्वत्समीपे तु लक्ष्मणार्यःस्थितोऽभवत्।।
तमिदानीं दयासिन्धो मह्यम्देहि यतीश्वरम्।

अर्थात् - हे दयासागर भगवान वरदराज! यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य अपकी सेवा में बहुत दिनों तक रह चुके हैं। अब कृपा करके उन्हें आप मुझे दे दें। किन्तु भगवान ने विचार किया कि दान की भी तो कोई सीमा होती है। यतीन्द्र श्रीरामानुजाचार्य तो मेरे प्राण हैं। प्राणों का दान अशक्य होता है। अतः उन्होंने श्रीरंगम से आये हुए याचक ब्राह्मण को लौटा दिया। उस भक्त ब्राह्मण ने जाकर सारा वृत्तान्त भगवान रंगनाथ से निवेदन किया। तदनन्तर भगवान रंगनाथ ने देवनाट्य विशारद श्रीयामुनाचार्यजी के पुत्र वररंगाचार्य स्वामी को बुलाकर आदेश दिया कि वे अपनी नाट्य कला से मोहित कर पुरस्कार में श्रीरामानुजाचार्यजी को माँगकर लायें। भगवान् रंगनाथ की आज्ञा पाकर श्रीवररंगाचार्य स्वामीजी कांची आये। श्री कांचीपूर्ण स्वामी प्रभृति उनका आगमन सुनकर शंख-काहली आदि के घोषपूर्वक उनका अर्घ्यादि से अर्चन करके हस्तिगिरिवास रसिक स्वर्णिमवस्त्रधारी श्रीवरदराज भगवान की सन्निधि में आकर साष्टांग प्रणिपात पुरस्सर तीर्थ, शठकोप, तुलसी, प्रसाद ग्रहण करके श्री कांचीपूर्ण

स्वामी द्वारा निर्दिष्ट गृह में आवास ग्रहण किया। श्री कांचीपूर्ण स्वामीजीने भी अपने गुरु पुत्र को सभी प्रकार का सोविध्य प्रदान किया।

दूसरे दिन प्रातः ही सारी पौर्वाह्निक क्रियाओं को समाप्त कर नाट्यकर्मोचित मोहक वेष धारण करके, जब कि भगवान भी आपके नाट्य को देखने के लिए श्रीदेवी-भूदेवी के साथ अपने सहज स्वाभाविक प्रकाश से प्रकाशित करते हुए त्याग-मण्डप में विराजमान थे, भगवान की सेवा में पधारे तथा नाना प्रकार के देवगान एवं नाट्य से उन्हें प्रसन्न किया। श्री वररंगाचार्य के नृत्य गीतादि से प्रसन्न हो भगवान ने उन्हें अमूल्य वस्त्राभूषण प्रदान किये, किन्तु इन वस्तुओं को देखकर श्री वररंगाचार्य बोले- ''भगवान्! मुझे इन वस्तुओं से क्या मतलब? श्रीमान्! मनवांछित वस्तु प्रदान करने की कृपा करें।'' इनकी प्रार्थना सुनकर भगवान वरदराज बोले- ''मुझे और लक्ष्मी को छोड़कर आप जो कुछ भी माँगेंगे, मैं वही दूँगा।'' भगवान की वाणी सुनकर श्री वररंगाचार्यजी बोले- ''दयासिन्धो! श्रीमान् भगवान रंगनाथ के लिए यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्यजी को दे दें। भगवान रंगनाथ का इनमें महान् प्रेम है। मेरी यही याचना है।'' श्री वररंगाचार्य की वाणी से व्याकुल भगवान वरदराज बोले- ''यतिराज को छोड़कर जो माँगो सो दे दूँ, वे तो मेरे प्राण हैं और प्राण कहीं दान नहीं दिये जाते हैं। और न ही कोई प्राणों की याचना ही करता है।'' भगवान वरदराज की वाणी सुनकर श्रीवररंगाचार्यजी बोले-श्रीमान् को तो सारा संसार सत्यवान् एवं दयालु कहता है। श्रीमान् पहले देने की प्रतिज्ञा करके अब यतिराज को देने से इनकार कर रहे हैं। श्रीमान् ने रामावतार में प्रतिज्ञा की थी कि- ''रामो द्विर्नाभिभाषते।'' श्रीमान् चिन्ता छोड़कर यतिराज को भगवान् रंगराज के लिए प्रदान करें। भगवान से उपर्युक्त निवेदन करके वररंगाचार्य

स्वामीजी ने यतिराज रामानुजाचार्यजी का हाथ पकड़कर श्रीरंगम चलने के लिए प्रस्ताव किया। श्रीयतिराज ने भी श्री भगवान वरदराज को साष्टांग प्रणिपात प्रतिपादन कर शीघ्र ही अपने मठ में आकर शिष्यों को सम्पूर्ण वृत्तान्त बतलाकर श्रीरंगम के लिए प्रयाण किया। किन्तु दाशरथी तथा श्रीकूरेश नामक यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य के पीछे भगवान रंगनाथ के दर्शन की इच्छा प्रकट करते हुए चल पड़े।

आँखों में आँसू और हृदय में अपने सम्बन्धियों की अपार सम्वेदना लिये पितृगृह को छोड़कर पतिगृह में जाती हुई नववधू की भाँति जिस-किसी तरह कांचीपुरी और वरदराज भगवान को छोड़कर यतिश्रेष्ठ श्रीरामानुजाचार्य ने श्रीरंगम की ओर प्रस्थान किया।

।।श्री प्रपन्नामृत का १६ वाँ अध्याय समाप्त हुआ।।

क्रमशः

भगवद्गीता पारायण का फल

श्री वेमुनूरि राजमौलि
मोबाइल - ८९८५२३९३१३

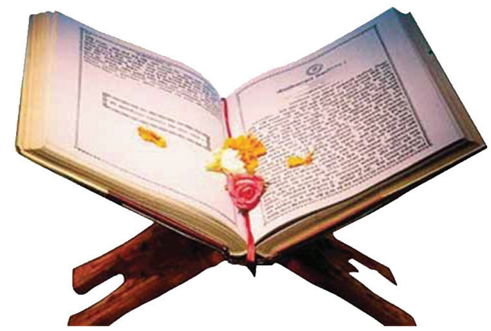

''मल निर्मोचनं पुंसां गंगास्नानं दिने दिने।
सकृद्गीतांबसि स्नानं संसार मलमोचनं।।''

ऐसा स्कांद पुराण ने भगवद्गीता की महिमा बतायी। याने प्रति दिन किया जानेवाला गंगास्नान मानवों का शरीर-मालिन्य दूर करता है। किन्तु ''गीता'' नामक जल में कम से कम एक बार तो भी स्नान का आचरण करे, तो संसार के सारे मालिन्य का निर्मूलन होता है।

वैसे परम पवित्र भगवद्गीता का उपदेश; कौरव व पांडवों के बीच हुए भीषण संग्राम के पहले, भवरोग पीड़ित अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण परमात्मा ने मार्गशिर शुक्ल एकादशी के दिन किया। उसी दिन महोत्कृष्ट, उद्ग्रंथ, ग्रंथराज भगवद्गीता की जयंती है। उसमें निक्षिप्त विशिष्ट बोधना-पटिमा के कारण उसे उतना महान गौरव प्राप्त हुआ। साधारणतया विलक्षण महात्माओं की जयंतियाँ मनाया जाना अकसर हम देखा करते हैं। उदाहरण के लिए श्रीशंकर जयंती, रामानुज जयंती, हनुमज्ञयंती इत्यादि हैं। किन्तु एक ग्रंथ की जयंती, महान् व्यक्तियों की जयंतियों की तरह मनाकर पूजना तथा त्यौहारों की सूची में स्थान दिया जाना, विश्वभर में सिर्फ 'भगवद्गीता' को ही प्राप्त है।

भगवान श्रीकृष्ण ने बाल्यकाल में गोपिकाओं के लिए वेणुगान किया, तो बाद में अर्जुन के मिष से भवरोग पीडित लोगों केलिए गीतागान किया। केला छीलकर हाथ में रख देने की भांति साधकों केलिए अनेक विषयों का वर्णन विस्तृत रूप से किया। भगवद्गीता में स्वामी ने ''भक्त को कैसा रहना चाहिए? उसके मार्ग में आनेवाले प्रतिबंध, निवारणोपाय, किस प्रकार के आहार-पदार्थ लेने चाहिए? किस प्रकार का भोजन नहीं करना चाहिए? स्थितप्रज्ञ के लक्षण कौन-से हैं?'' इत्यादि अनेक विषयों का बोध-विस्तृत रूप से किया। अहो! भक्तों के प्रति भगवान की कितनी अनुकंपा है?

पूर्व काल में, एक संदर्भ में श्रीवल्लभाचार्य जी से किसी भक्त ने पूछा- ''विविध-शास्त्रों में से कौन-सा शास्त्र महान् है? इसके लिए उन्होंने प्रत्युत्तर के रूप में कहा- ''एकं शास्त्रं देवकीपुत्र गीतं''। अर्थात् देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का गाया हुआ एक गीता शास्त्र ही दूसरे शास्त्रों की अपेक्षा महान् है। ऐसा वल्लभाचार्य जी ने विवरण दिया।

उसी प्रकार जगद्गुरु शंकराचार्य जी से एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि ''कौन-सा गान गाना चाहिए?''

उन्होंने ''गेयं गीतानाम सहस्त्रं'' कह कर प्रत्युत्तर दिया। इसका अर्थ है कि गीता तथा विष्णु सहस्त्र नामों का गान करना चाहिए।

अत्यन्त मेधासंपन्न, सर्वशास्त्र विशारद; दोनों पीठाधिपतियों ने गीता का ही समर्थन किया। इससे हम यह ग्रहण कर सकते हैं कि गीता की शक्ति अमोघ है। ''सर्वशास्त्रमयी गीता''- गीता सर्व शास्त्रों से परिपूरित है; ऐसा स्कांद पुराण ने बताया। गीता सुगीता कर्तव्याकिमनैः गीता पाठ सबसे श्रेष्ठ है; दूसरे शास्त्रों से क्या प्रयोजन?- कहकर महाभारत ने भी सहस्त्रों मुखों से गीता की प्रशंसा की। भारतीयों के अतिरिक्त अनेकों विदेशियों ने भी भगवद्गीता की खूब प्रशंसा की। ''एड्विन आर्नाल्ड'' नामक व्यक्ति ने गीता के अठारह अध्यायों का अंग्रेजी में पद्यों के रूप में ''दिव्यगीतं'' नाम से एक ग्रंथ लिखा। उस गीता ने बड़ी प्रशंसा प्राप्त की। अनेकानेक महान् व्यक्तियों ने गीतामृत का पान किया। अपितु मुमुक्षुओं के लिए ज्ञानामृत प्रदान करनेवाली भगवद्गीता, अक्षय-अमृत-भाण्डागार के रूप में शोभा पा रही है।

हर कोई इसमें प्रवेश करने का योग्य है। इसके लिए जाँत-पाँत, धर्म, वर्ग, वयो, लिंगभेद नहीं है। संपूर्ण भक्ति व मोक्षज्ञान की जिज्ञासा जिसमें हो, वह हो इसके लिए योग्य है।

जगद्गुरु श्री शंकराचार्य जी ने गीता की प्रशस्ति निम्न प्रकार से की।

भगवद्गीता किंचिदधोता
गंगाजल लवकणिका पीता
सकृदपियेन मुरारि समर्चा
तस्यकरोति ययोपिन चर्चाम्।

इसका मतलब है कि जरा भगवद्गीता का अध्ययन करने वाले, किंचित मात्रा में भी गंगा जल का पान करने वाले, विष्णु भगवान की एक बार तो भी पूजा करने वाले के यहाँ जाने का यमराज साहस नहीं करता। इसलिए गीता पर संपूर्ण विश्वास रखकर, उसमें निहित सत्यों का अनुष्ठान करके इसी जन्म में निरतिशयानंद पाने मानव को प्रयत्न करना चाहिए।

गीकारं त्यागरूपं स्यात्तत्त्व बोधं तकारकम्।
गीतावाक्यमिदं तत्त्वं ज्ञेयं सर्व मुमुक्षुभिः।।

''गी'' माने त्याग; ''त'' याने तत्त्वज्ञान है। त्याग और तत्त्वज्ञान बोध करने वाली है गीता; ऐसा मुमुक्षुओं को जानना चाहिए। ''गीता... गीता... गीता'' कहकर स्मरण करने पर ''तगि... तगि... तगि'' कहकर सुनायी पड़ता है। वही त्यागी है; त्याग के बारे में बताने वाली है गीता; ऐसा हमको ग्रहण करना चाहिए। गीता, गंगा, गायत्री और गोविंद को भूलना नहीं चाहिए।

मानव को अपने जीवन में कम से कम एक बार तो भी गीता पढ़नी चाहिए। कम से कम एक श्लोक का तो भी कंठस्थ करके प्रतिनित्य स्मरण करना चाहिए। इसी तरह अपने जीवन में कम से कम एक बार तो भी गंगा-स्नान करना चाहिए। गायत्री माता की आराधना करनी चाहिए। गोविंद की उपासना करनी चाहिए। जो इन चारों के बारे में नहीं जानता, वह मोक्ष के बारे में प्रयास करने वाला नहीं होता; ऐसा इसका अर्थ है।

वास्तव में प्रत्येक प्राणी के हृदयान्तराल में पांडव-कौरवों के बीच के युद्ध की तरह युद्ध चलता ही रहता है। जीवन-गम्य में प्रति नित्य धर्म और अधर्म; सत्य और असत्य; न्याय और अन्याय के बीच प्रतिक्षण झगड़ा चलता ही रहता है। इस झगडे में निश्चयात्मक बुद्धि जितना शुद्ध और विवेक सहित रहती है, उतनी विजय प्रत्येक प्राणी को प्राप्त होती है। इसीलिए उपनिषदों ने बुद्धि की तुलना सारथी से की। रथ को, निर्विघ्न गम्य-स्थान तक पहुँचना हो तो महा प्रज्ञावान, कुशल सारथी की आवश्यकता है। साक्षात् श्रीकृष्ण परमात्मा जैसे सारथी मिल जाय तो क्या हमारा इह-जीवन-रथ मोक्ष स्थान तक नहीं पहुँच सकता? अर्जुन को अपने पुण्य-विशेषों के कारण श्रीकृष्ण जैसे सारथी मिल गये। कर्तव्य-विमूढ़ हो रणरंग में उपस्थित सेना को देखकर अपने सगे व अपने बंधुजनों को देख कर भव-रोग-पीड़ित हो धनुर्बाण जमीन पर पटक देने वाले अर्जुन को अपने बोधन-पाटव से भगवान ने सत्यमार्ग पर चलाया। उनका बोधन ही 'भगवद्गीता' है। इसी तरह हृदय क्षेत्र में अध्यात्म-चिंतन को परिपूर्ण बनाने वाली पवित्र बुद्धि तथा मन को बोध करने वाला दिव्य बोध भी ''भगवद्गीता'' कहलाती है। गीता में निहित अंतरार्थ यही है। अर्जुन की तरह प्रत्येक जीव को अपने जीवन की बागड़ोर को परमात्मा के हाथों धरकर चलने से

उनके अनुग्रह से मोक्ष रूपी गम्य स्थान को आसानी से पा सकते हैं।

भगवद्गीता के पारायण से अध्यायवारी सत्फल निम्न प्रकार मिलते हैं।

१) प्रथमाध्याय-पारायणः - पाप-विमुक्ति तथा पूर्व-जन्म-स्मृति प्राप्त होती है।

२) द्वितीयाध्याय-पारायणः - आत्मज्ञान-प्राप्ति कराता है।

३) तृतीयाध्याय-पारायणः - पाप-राहित्य तथा प्रेतत्व-विमुक्ति पहुँचाता है।

४) चतुर्थाध्याय-पारायणः - मानवों के अलावा वृक्षों को भी दोषों से विमुक्त कराता है।

५) पंचमाध्याय-पारायणः - दोषों से मुक्त कराता है। पशु-पक्ष्यादि भी तर जाते हैं।

६) षष्ठमाध्याय-पारायणः - मोक्ष-प्राप्ति कराता है।

७) सप्तमाध्याय-पारायणः - मानव, पितृदेवता, सरीसृप आदि तर जाते हैं।

८) अष्टमाध्याय-पारायणः - सारी दुर्गतियों का निवारण करके मोक्ष की प्राप्ति कराता है।

९) नवमाध्याय-पारायणः - ग्रह-दोषों का विनाश करके मुक्ति पहुँचाता है।

१०) दशमाध्याय-पारायणः - ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति कराता है।

११) एकादशाध्याय-पारायणः - परमात्मा की पद-प्राप्ति कराकर सारे पापों से विमुक्त कराता है।

१२) द्वादशाध्याय-पारायणः - मोक्ष रूपी सद्गति प्राप्त होती है तथा दिव्य शक्तियों का उदय होता है।

१३) त्रयोदशाध्याय-पारायणः - उत्तम गति की प्राप्ति होती है; दोषों का निवारण होता है।

१४) चतुर्दशाध्याय-पारायणः - सद्गति मिलती है; पापों से विमुक्त करता है।

१५) पंचदशाध्याय-पारायणः - उत्तम मोक्ष-गति प्राप्त होती है। सारे पापों से निवृत्त हो जाते हैं।

१६) षोडशोध्याय-पारायणः - मोक्ष की सिद्धि होती है। बल, विक्रम आदि मिल जाते हैं।

१७) सप्तदशाध्याय-पारायणः - मोक्ष-प्राप्ति के अलावा सारे रोगों से विमुक्त हो जाते हैं।

१८) अष्टदशाध्याय-पारायणः - मोक्ष रूपी सद्गति प्राप्त होती है। सर्व-पुण्य-फल प्राप्त कराता है।

सर्वेजनाः सुखिनो भवंतु

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

लेखक लेखिकाओं से निवेदन

सप्तगिरि पत्रिका में प्रकाशन के लिए लेख, कविता, रचनाओं को भेजनेवाले महोदय निम्नलिखित विषयों पर ध्यान दें।

१. लेख, कविता, रचना, अध्यात्म, दैव मंदिर, भक्ति साहित्य विषयों से संबंधित हों।

२. कागज के एक ही ओर लिखना होगा। अक्षरों को स्पष्ट व साफ लिखिए या टैप करके मूलप्रति डाक या ई-मेइल (hindisubeditor@gmail.com) से भेजें।

३. किसी विशिष्ट त्यौहार से संबंधित रचनायें प्रकाशन के लिए ३ महीने के पहले ही हमारे कार्यालय में पहुँचा दें।

४. रचना के साथ लेखक धृवीकरण पत्र भी भेजना जरूरी है। 'यह रचना मौलिक है तथा किसी अन्य पत्रिका में मुद्रित नहीं है।'

५. रचनाओं को मुद्रित करने का अंतिम निर्णय प्रधान संपादक कार्य होगा। इसके बारे में कोई उत्तर प्रत्युत्तर नहीं किया जा सकता है।

६. मुद्रित रचना के लिए परिश्रमिक (Remuneration) भेजा जाता है। इसके लिए लेखक-लेखिकाएँ अपना बैंक प्रथम पृष्ठ जिराक्स (Bank name, Account number, IFSC Code) रचना के साथ जोड करके भेजना अनिवार्य है।

७. धारावाहिक लेखों (Serial article) का भी प्रकाशन किया जाता है। अपनी रचनाओं का भेजनेवाला पता-

प्रधान संपादक,
सप्तगिरि कार्यालय,
ति.ति.दे.प्रेस कांपौन्ड, के.टी.रोड,
तिरुपति – ५१७ ५०७. चित्तूर जिला।

जीवन और दिनचर्या

- श्री अंकुश्री,
मोबाइल - ८८०९९७२५४९

हम अपने आसपास जितने भी पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि देखते हैं, उन सब में जीवन है। जिसमें जीवन होता है, उसे हम जीवधारी कहते हैं। हर जीवधारी की दिनचर्या निर्धारित है। अर्थात् वे निर्धारित दिनचर्या के अनुसार जीवन जीते हैं। नन्हा-सा पौधा हो या विशाल पेड़, छोटा-सा कीट हो या वृहदाकार प्राणी- सभी की दिनचर्या निर्धारित है। निर्धारित दिनचर्या के अनुसार रहने वाले का जीवन सुखद और मंगलमय होता है। ठीक इसके विपरीत जिनकी दिनचर्या अनियमित है। अर्थात् जो निर्धारित दिनचर्या नहीं जीते हैं, उनका जीवन प्रवाह बाधित रहता है।

मानव-जीवन को बेशकीमती माना गया है। इस बेशकीमती जीवन का सम्यक उपयोग एक कला है। इस कला में जो जितना निपुण होता है। वह उतना ही सफल माना जाता है। क्षण-क्षण कर समय बीत रहा है। देखते-देखते दिन बीत जाता है और उसी तरह महीना और वर्ष भी निकल जाता है। फिर आती है जीवन की बारी। वही बेशकीमती जीवन, ऐसा जीना सभी चाहते हैं। मगर जिसे जीने की कला सभी को नहीं आती।

जीवन के अंतिम पड़ाव पर पहुँच कर मानव अपनी उपलब्धियों का चिंतन करता है। योग्यता और क्षमता के अनुसार अर्जित उपलब्धियों का आंकलन करने पर पता चलता है कि उसने क्या खोया और क्या पाया। कुछ लोग तो इस ओकलन से संतुष्ट हो लेते हैं। मगर अधिकतर लोगों को असंतुष्ट ही होना पड़ता है। किन्तु यह ऐसा थका-हारा समय होता है, जब अपनी सोच के अनुसार कार्य कर पाना संभव नहीं हो पाता। ऐसे में हाथ मल कर रह जाना पड़ता है।

लेकिन जो लोग बुढ़ापे में हाथ मलते हुए लोगों को देख-सुन चुके होते हैं, उनका जीवन ऐसी पुनरावृत्ति से बच जाता है या बच सकता है। वस्तुतः यह व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसकी जीवन शैली अर्थात् दिनचर्या पर निर्भर करता है।

प्रातः उठ कर शौचादि से निपटने और पूजादि के बाद अपने काम पर चला जाना और फिर शाम को आकर अल्पाहार-आहार के बाद रात्रि में सो जाना दैनिकी है, दिनचर्या नहीं। दिनचर्या का अर्थ है प्रातः से रात्रि तक मन की शांति, तन की सुरक्षा और धन के उपार्जन और उसकी रक्षा के लिये किया गया कार्य। दिनचर्या सिर्फ दिन भर के कार्यों को निपटाने का नाम नहीं है। बल्कि यह पूरे जीवन के आंकलन के अनुसार की गयी दैनिक व्यवस्था है।

समय या परिस्थिति की धार में बह जाने से जीवन को वास्तविक पड़ाव नहीं मिल पाता। प्रकृति की हर इकाई की दिनचर्या सुनिश्चित है। पेड़-पौधा हो या कीट-पतंग-सभी जीव-जंतुओं का जीवन क्रमबद्ध

होता है। जागने, चरने, खाने, पीने, घूमने, सोने - सबका क्रम निर्धारित है। पौधे दिन में पानी पीते हैं और आक्सीजन देते हैं; जबकि रात में वे विश्राम करते हैं और कार्बन डाई आक्साइड छोड़ते हैं। ईमली, आंवला, समी आदि जैसे संयुक्त पत्तियों वाले पौधों को रात में सोते हुए स्पष्ट देखा जा सकता है। उनकी पत्तियाँ आपस में सट जाती हैं, जो सुबह होने पर खुलती हैं। नदियों का जो बहाव दिन में रहता है, रात में वह बदल जाता है। कीट-पतंगा और पशु-पक्षी जो दिन में विचरण करते हैं, वे रात में विश्राम करते हैं और जो रात में विचरते हैं, वे दिन में विश्राम करते हैं। बात सिर्फ दिन या रात की नहीं है, बल्कि दिन या रात में भी उनकी निर्धारित चर्या की है। जिसके अनुसार वे दिन-रात का अपना समय व्यतीत करते हैं।

प्रकृति की हर इकाई समय के अनुसार चलती है। ऐसे में मानव जैसा सर्वाधिक विकसित जीव क्यों पिछड़े? प्रातः से रात्रि तक, अर्थात् जगने से सोने तक की दिनचर्या निर्धारित कर काम किया जाये तो सफलता अधिक निकट आ जाती है। बात सिर्फ सफलता की नहीं, अपितु समग्र जीवन की है।

हर किसी का जीवन या जीने की कला दूसरे के जीवन या जीने की कला से भिन्न हो सकती है। इसलिए हर किसी की दिनचर्या भी एक नहीं हो सकती परिस्थिति और आवश्यकता के अनुसार हर किसी की दिनचर्या अलग-अलग हो सकती है। लेकिन दिनचर्या निर्धारित और अनुपालित होनी चाहिये।

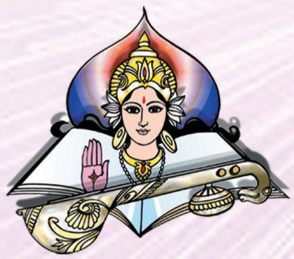

आइये, संस्कृत सीखेंगे..!!

लेखक - महामहोपाध्याय काशिकृष्णाचार्य

आयोजक - महामहोपाध्याय समुद्राल लक्ष्मणय्या

हिन्दी में निर्वहण - डॉ.सी.आदिलक्ष्मी

मोबाइल - ९९४९८७२१४९

द्वितीयः पाठः = दूसरा पाठ

ते = वे

कदा? = कब

सन्ति = हैं

यूयं = तुम सब

तदा = फिर

स्थ = तुम सब रहे हैं

वयं = हम सब

इदानीं = अभी

स्मः = हम सब रहे हैं

१. त्वं तदा तत्रासि	१. तुम फिर वहाँ है।
२. ते सन्ति	२. वे हैं।
३. यूयं स्थ	३. तुम सब रहे हैं।
४. वयं स्मः	४. हम सब रहे हैं।
५. ते इदानीं कुत्र सन्ति?	५. वे अभी कहाँ हैं?
६. यूयं कदा अत्र स्थ?	६. तुम सब कब यहाँ रहे हैं?
७. वयं तदा अत्र स्मः	७. हम सब फिर यहाँ रहे हैं
८. सः इदानीं कुत्रास्ति?	८. वह अभी कहाँ है?
९. अहं इदानीं अत्रास्मि	९. मैं अभी यहाँ हूँ
१०. यूयं कुत्र स्थ?	१०. तुम सब कहा रहे हैं।

१. अहं इदानीं तत्रास्मि	१. मैं अभी वहाँ हूँ।
२. यूयं इदानीं तत्र स्थ।	२. तुम सब अभी वहाँ रहे हैं।
३. वयं तदा कुत्र स्मः?	३. हम सब फिर कहाँ रहे हैं?
४. ते कदा तत्र सन्ति?	४. वे कब वहाँ हैं।
५. यूयं कदा तत्र स्थ?	५. तुम सब कब वहाँ रहे हैं?
६. वयं तदा स्मः।	६. हम सब फिर रहे हैं।
७. ते सन्ति।	७. वे हैं।
८. यूयं स्थ।	८. तुम सब रहे हैं।
९. वयं स्मः।	९. हम सब रहे हैं।
१०. ते कुत्र सन्ति	१०. वे कहाँ हैं।

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Prof.K.Rajagopalan,** Ph.D., Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri P.Ramaraju,** M.A., Special Officer (Press & Publications), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

श्री प्रसन्न वेंकटेश्वरस्वामी के मंदिर को
(बूरगमंदा, सदुं मंडल, जिला चित्तूर)
२०.११.२०२० पर तिरुमल-तिरुपति देवस्थान ने अपने
परिशिष्ट आलय के तौर पर स्वीकारा था।

शास्त्रोक्त-तौर पर निर्वहित यह कार्यक्रम
आं.प्र.राज्य पंचायतराज शाखा के मंत्रिवर्य
गौ।। श्री पेद्दिरेड्डि रामचंद्रारेड्डिजी के आध्वर्य में संपन्न हुआ।।

तिरुचानूरु श्री पद्मावती अम्मवार के आलय में ऑन-लॉइन-द्वारा
घन-संपन्न लक्ष-कुंकुमार्चना का दृश्य

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY
Published by Tirumala Tirupati Devasthanams. printing on 25-11-2020.
Regd. with the Registrar of Newspapers under "RNI" No.10742,
Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepayment No.PMGK/RNP/WPP-04/2018-2020